भास-ग्रन्थावली

जिसमें

महाकवि भास के समग्र नाटकीय रचनाओं के
संक्षिप्त कथानक दिये गये हैं

श्रीहरदयालुसिंह

गयाप्रसाद एण्ड सन्स
पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता
आगरा

त्ति] १९५७ [मूल्य १)

विषय-सूची

प्रस्तावना

यह कोई कम गौरव की बात नहीं है कि शिक्षा-विभाग द्वारा शिक्षा-प्रणाली मे हमारे प्राचीन नाटको को भी अब स्थान दिया जाने लगा है, जिससे विद्यार्थियों को आदर्श पुरुषों के जीवन-वृत से परिज्ञान प्राप्त हो और साथ ही साहित्य की भी अभिवृद्धि हो। साहित्य समाज का एक प्रबल साधन है, क्योंकि समग्र संसार का उत्थान-पतन इसी पर अवलम्बित है। हम जिस शिक्षा मे रँगे हुए होते हैं वैसा ही प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है। इस साहित्य प्रचार के तीन मुख्य साधन हैं—आचरण, मौखिक उपदेश और लेखबद्ध शिक्षा। जो शिक्षा अपने आचरणों से दी जा सकती है वह ज्ञान की कोरी बातों से नहीं दी जा सकती परन्तु ऐसे आदर्श पुरुष बहुत कम मिलते हैं; और जो मिलते भी हैं उन्हे इतना अवकाश नहीं मिलता कि वे स्वयं कोने-कोने मे जाकर अपनी शिक्षाएँ सुना सके। अन्ततो गत्वा हमें साहित्य की ही शरण लेनी पडती है, जिसमे कि लेखबद्ध शिक्षा का प्राधान्य है।

साहित्य के अन्तर्गत कविता, नाटक, उपन्यास और गल्प सभी का समावेश है। मानवीय जगत मे कविता को ही यथेष्ठता मिली है। यहाँ तक कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने तो "वाक्यं रसात्मकं काव्य" तक कह डाला है। यह काव्य दो प्रकार का है—गद्य काव्य और पद्य काव्य। जिसका गद्यमय वर्णन हो उसे गद्य काव्य और जिसका पद्यमय वर्णन हो उसे पद्य काव्य कहते हैं। गद्य काव्य भी दो प्रकार का है एक तो दृश्य और दूसरा

श्रव्य। कार्य रूप में जिसका अनुकरण दिखाया जाय उसे दृश्य कहते हैं और जो लेखबद्ध हो वह श्रव्य कहा जाता है। सहृदय जनों को जीवन का आनन्द दृश्य और श्रव्य दोनों ही प्रकार के काव्यों से मिलता है। यह साहित्यक चमत्कार एवं आनन्द भास जैसे महाकवियों की रचनाओं में उपलब्ध है। प्रस्तुत पुस्तक मे महाकवि भास की समग्र नाटकीय कथाओं का छात्रोपयोगी सक्षिप्त सार दिया गया है।

यदि ये कथाएँ छात्रों के हृदय मे भास की रचनाओं के अध्ययन में अनुराग उत्पन्न करेंगी, तो हमें विश्वास है कि एक दिन उन्हें मौलिक नाटक पढ़ने की भी रुचि होगी और उसी दिन हमारी अभिलाष की आँशिक पूर्ति भी होगी।

हम नहीं कह सकते कि एक मुट्ठी शक्कर उस सुधा सागर को और मीठा कर सकेगी या नहीं, परन्तु जो कुछ भी है वह छात्रों के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है कि विज्ञ पाठक इसे अपनाकर महाकवि भासकी उस विमल रचना के लिये कालिदास के शब्दो में 'प्रथित यश' की पदवी देंगे और लेखक के परिश्रम को सफल बनायेंगे।

आगरा
विजया दशमी १९९४

विनयावनत—
लेखक

महाकवि भास

महाकवि भास किस समय में हुए थे, इसका निश्चयात्मक निर्णय करना बड़ा कठिन है। संस्कृत-साहित्य के कवियों और नाट्यकारों की कुछ ऐसी प्रवृत्ति सी परिलक्षित होती है, कि उन्होंने अपना परिचय देने में बड़ा संकोच किया है; जिसका दु:परिणाम यह हुआ कि बड़े बड़े साहित्य महारथियों के उत्कट अध्यवसाय करने पर भी महामना कालिदास, भवभूति आदि कवियों के विषय में जो कुछ जाना गया है वह नहीं के बराबर है; और वह सब एक प्रकार से अनुमान के आधार पर अवलम्बित है। इत्थमिदम् के रूप मे कुछ भी नही कहा जा सकता। ऐसी दशा में महाकवि भास तो हमारे अनुमान से कालिदास से भी प्राचीन हैं। यदि इनके सम्बन्ध मे भी कोई ऐसा ही विवाद ग्रस्त विषय उपस्थित हो तो इसमें क्या आश्चर्य है?

महाकवि भास संस्कृत-साहित्य की नाट्य-रचना में पथ-प्रदर्शक हैं, क्योंकि इनसे पहले के और नाटक नहीं मिलते। अभी सन् १६१२ तक भास का नाम मात्र सुनाई पड़ता था। उनकी रचना देखने का सौभाग्य किसी को प्राप्त नहीं हुआ था, किन्तु ट्रावनकोर राज्य के साहित्य कार्याध्यक्ष महामना पण्डित गणपति शास्त्री के अनवरत उद्योग से भास के १५ नाटक मिले हैं। शास्त्री जी ने स्वप्नवासवदत्ता की भूमिका में इसका विशद विवेचन किया है।

नाट्यकला और भास के सम्बन्ध मे पाश्चात्य पंडितों का कुछ और ही मत है। श्रीयुत "वेवर" महोदय भारतीय नाट्यकला

को ग्रीक नाटकों का परावर्ती मानते हैं, सो भी इस तर्क के आधार पर कि ख्रिस्टीय तृतीय शताब्दी में भारत और यूनान में घनिष्टता थी। इसका प्रमाण यह है कि —

(१) जगत विजयी अलक्षेन्द्र ने भारत को जीता था।

(२) सिल्यूकस नेकूर ने अपनी कन्या "एथेना" का विवाह महाराज चन्द्रगुप्त के साथ किया था।

(३) 'टीलोमी द्वितीय' ने पाटलिपुत्राधीश्वरों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया था। उभय देशों के राजदूत दोनों राज्यों मे आया जाया करते थे।

(४) भारतवर्ष के ब्राह्मण भी ग्रीक साहित्य को आदर की दृष्टि मे देखते थे।

(५) शिला लेखो में भी यवन और ग्रीक पदों का प्रयोग किया गया है।

(६) "मैकडोनल्स" महोदय ने अपने सस्कृत "लिट्रेचर" मे इस मत का समर्थन किया है।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर "वेवर" महोदय ने मान लिया कि भारतीय नाट्यकला का जन्म ग्रीक नाट्यकला के अनन्तर हुआ है। परन्तु यदि इस विषय की मीमासा की जाय तो सारे तर्क असार एव निराधार सिद्ध होगे। इसके विरुद्ध निम्नलिखित तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं —

(१) मिस्टर 'मेकडोनल' और 'कोलब्रुक' इत्यादि पाश्चात्य पण्डितवर इस तर्क से सहमत न होकर भारतीय साहित्य को 'स्वदेश प्रसूत' मानते हैं।

(२) कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशी' नाटक मे कहा है कि नाट्य शास्त्र के प्रवर्तक भरत मुनि ने सुरेश्वर की सभा मे लक्ष्मी स्वयम्वर का अभिनय कराया था।

(३) महाकवि भवभूति ने भी अपने 'उत्तर रामचरित' मे उल्लेख किया है कि वाल्मीकि मुनि ने रामायण बनाकर अप्सराओं के द्वारा उसका अभिनय कराने के लिये चापपाणि कुश के हाथ उसे भरत मुनि के आश्रम मे भेजा था। "भामहाचार्य" बड़े ही प्राचीन साहित्यकार हैं। इन्होंने भी अपने ग्रंथो मे अपने से प्राचीन कवियो का उल्लेख किया है।

(४) नाट्याचार्य भरतमुनि ग्रीक नाट्यकारो की अपेक्षा अवश्य बहुत प्राचीन हैं।

इन कारणों से यह बात दृढ़ता-पूर्वक कही जा सकती है कि नाट्यकला का जन्म, अभिवृद्धि और उत्कर्ष इसी देश मे हुआ; इसमे कोई सन्देह ही नही, और भास ही सबसे प्राचीन नाटककार थे।

कविवर राजशेखर ने कहा है कि भास, वररुचि, रामिल, सौमिल और साहसाङ्क ये सब प्राचीन कवि हैं।

यथा—

"भासो रामिलसौमिलौ वररुचिः श्री साहसांकः कवि.।"

इसके अतिरिक्त सूक्ति मुक्तावली में भास प्रणीत स्वप्नवासवदत्ता नाटक की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है कि:—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावक.॥

कादम्बरीकार बाणभट्ट ने भी अपने 'हर्ष चरित्र' मे भास की प्रशंसा इस प्रकार की है.—

सूत्रधार कृतारम्भै नटिकैर्बहुभूमिकैः।

भास का काल-निर्णय

महाकवि कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में भास के विषय में इस प्रकार लिखा है—"भाव ! मा तावत्। प्रथितयशसा भासमौमिल्लकवि-पुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य वर्त्तमान कवे कालिदास्य क्रियाया कथं परिषदो बहुमान ?"

इस उक्ति से प्रमाणित होता है कि भास कालिदास से पहिले हुए थे और इतने पहिले हुए थे कि उस समय उनके नाटक आदर की दृष्टि से देखे जाते थे, क्योंकि कालिदास ने उनके लिए 'प्रथित यश' पद का प्रयोग किया है, उस समय में जब कि पुस्तक-प्रकाशन में इतनी सुगमता न थी, और न रेलों के अभाव से यात्रा मे सुविधाएँ थीं। अत उस समय किसी मनुष्य को प्रथितयशता प्राप्त करने में कम से कम २०० वर्षों की आवश्यकता थी।

भास का समय निर्णय करने के लिए ऐतिहासिक साहाय्य की भी आवश्यकता है। उन्होंने अपने कई नाटकों मे भयकर 'परचक्रभय' की ओर सकेत किया है, और भरत वाक्यों में कहीं परचक्रभय का शमन, कहीं उसका उदय और कहीं उसके निराकरण का उल्लेख किया है, और तत्कालीन राजा को सागर-मेखला, हिम-विन्ध्य कुण्डला, एकातपत्रा पृथ्वी पर शासन करने का आशीर्वाद दिया है। अब हमे देखना चाहिये कि इतिहास मे कौनसा समय था जब भारत की स्थिति इस प्रकार हो रही थी ?

"स्वप्नवासवदत्ता" नाटक के उदयन नायक और वासवदत्ता नायिका मानी गई है। जिस प्रकार उदयन का परिचय स्वप्नवासवदत्ता मे दिया गया है, वैसा 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में नहीं

मिलता। भास ने मगधेश्वर दर्शक की बहिन पद्मावती का पाणि-ग्रहण उदयन के साथ होना लिखा है। यह दर्शक अजातशत्रु का पुत्र था और ईसा से ४७५ वर्ष पूर्व राजसिंहासन पर बैठा था। इससे भास का उदयन के समय में होना माना जा सकता है, परन्तु भास ने अपने नाटको मे जैसा परचक्रभय सूचित किया है वैसा ४७५ ई० पू० में नही था। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि भास सन ४७५ ई० पू० के बाद मे हुए हैं।

भास ने जैसा भयंकर परचक्रभय दिखलाया है, उससे अनुमान किया जा सकता है कि उसका कारण भारतीय नरेश्वरो की आन्तरिक अशान्ति न थी प्रत्युत कोई देश-व्यापी हलचल थी, जिसका कारण किसी विदेशीय महाशत्रु के आक्रमण का अनुमान किया जा सकता है; और साथ ही साथ जिस भारतीय सम्राट् ने इस परचक्रभय का निराकरण किया था वह भी कोई साधारण आदमी न था; क्योंकि भास ने उसके लिए 'राजसिंह' 'उपेन्द्र' आदि पदो का प्रयोग किया है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्हे किसी बड़े सम्राट् का आश्रय प्राप्त हुआ होगा।

अब हमे उदयन के समय से अर्थात् ४७५ ई० पू० से लगाकर कालिदास के समय अर्थात ईसा से पूर्व प्रथम शतक तक ऐसे राजाओं का पता लगाना चाहिये जिनके सम्बन्ध मे भास की उपर्युक्त बाते लागू हो सके। यहाँ पर यह बात जान लेना चाहिये कि हम कालिदास को ईसा से द्वितीय शताब्दी पूर्व का मानते हैं। हम 'प्रोफेसर पाठक' के उस मत के कदापि समर्थक नहीं, जिसमें उन्होंने कालिदास को ईसा के जन्म से ५ वीं शताब्दी के अनन्तर माना है। इस काल मे ४ प्रतापशाली राजा हुए। इनमे से प्रत्येक की राज्य-व्यवस्था के जानने से इस बात का पता चल जायगा कि भास किस राजा के समय मे थे।

ये राजा ४ थे (१) राजा महापद्मनन्द, (२) चन्द्रगुप्त, (३) अशोक, और (४) पुष्पमित्र।

(१) राजा महापद्मनन्द का राज्यारोहण ईसा से ३०० वर्ष पूर्व हुआ था। कहते हैं कि यह किसी हीन वंश में उत्पन्न हुए थे, इसलिए प्रजावर्ग इनसे रुष्ट रहता था। साथ ही साथ यह बड़े खर्च करने वाले और लोभी भी थे। उस समय चन्द्रगुप्त अल्पवयस्क थे और नन्द वंश मे भी घोर अशान्ति ने पैर जमा लिए थे। महाराज नन्द ने तो इन्हे देश से निकाल दिया था। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि इसी निर्वासित राजकुमार ने अलक्षेन्द्र को मगध पर आक्रमण करने का परामर्श दिया था, परन्तु सिकन्दर का आक्रमण मगध पर नहीं हुआ। इसलिए जब मगध पर कोई आक्रमण ही नहीं हुआ तो देश में किसी भीषण आपत्ति का जन्म अथवा तज्जनित परचक्रभय की कोई आशका नहीं। इससे पता चलता है कि परचक्रभय उस समय नहीं था। इससे भास महाराज नन्द के समय में नहीं हो सकते। दूसरी बात यह है कि नन्द बडा ही लोभी राजा था, भास ऐसे राजा का चित्र अकित करने कदापि न बैठते, क्योकि नाटक मे सदा उत्तम राजाओं का यशोगान किया जाता है। इसलिए भास नन्दराज के समय मे भी नहीं हो सकते।

(२) सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय का भी अब विवेचन कीजिये। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से महापद्मनन्द का निधन किया था। इसका उल्लेख "मुद्रा राक्षस" मे विशाखदत्त ने किया है। ईसा से ३२३ वर्ष पहले अलक्षेन्द्र 'बेबीलोन' मे जाकर मर गया, इसलिए भारत में केन्द्रिक शासन के अभाव से चारो ओर उपद्रव फैलने लगा। निर्वासित कुमार चन्द्रगुप्त ने भी इस आन्तरिक अशान्ति से यथेष्ट लाभ उठाया। उसने अपना सैन्य

बल संग्रह करके पंजाब से ग्रीकों को निकाल कर अलक्षेन्द्र के द्वारा स्थापित की हुई ग्रीक सत्ता का एक प्रकार से समूलोन्मूलन कर डाला। इस समय इसके राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण मे विन्ध्याचल, पूर्व में बंगाल और पश्चिम मे अरब सागर तक थी। इससे भास के उस राजसिंह की राज्य-सीमा मिलती है, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने स्वप्नवासवदत्ता मे किया था। भारत की यह दशा ईसा से पूर्व ३२१ से ३०५ तक रही।

सन् ३०३ ई० पूर्व मे सिल्यूकस नेकूर चन्द्रगुप्त से संग्राम मे परास्त होकर अपनी कन्या इन्हे दे गया। इन ऐतिहासिक घटनाओ से अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवत. भास ने महाराज चन्द्रगुप्त को ही 'राजसिंह' कहा है. और बहुत सम्भव है कि वह इन्हीं के समय मे हुए हो।

(३) चन्द्रगुप्त के अनन्तर उनके पौत्र अशोक २७७ ई० पू० राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने अपने पितामह के राज्य को बहुत बढाया। इनका राज्य उत्तर मे हिन्दूकुश से दक्षिण मे कन्या-कुमारी तक था। काबुल, बिलोचिस्तान और काश्मीर भी इनके आधीन थे। इसीलिए भास-निर्दिष्ट राजसीमा अशोक की राज-सीमा से नहीं मिलती। अत. यहाँ पर किसी प्रकार के परचक्र-भय की कल्पना व्यर्थ है।

दूसरी बात यह है कि अशोक बौद्ध-धर्मावलम्बी थे। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि उन्होंने अपनी कृपाण के बल से बौद्ध-धर्म को दूर-दूर तक फैलाया था।

भास वैष्णव-धर्मावलम्बी थे। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने अपने नाटकों मे भगवान् के सगुण स्वरूपों की वन्दना की है। इससे उनकी आस्तिकता सिद्ध होती है। परन्तु ब्राह्मण-धर्म और बौद्ध-धर्म के मौलिक सिद्धान्तो मे घोर प्रतिकूलता

सदा से रही है। इसलिए बौद्ध-धर्म का समर्थक सम्राट् का वैष्णव-धर्मावलम्बी कवि को आश्रय देना कुछ समझ में नहीं आता। इतना ही नहीं, भास ने अपने 'अविमारक' नाटक में बौद्ध-धर्मावलम्बियों का परिहास तक किया है। यदि यह बौद्ध-धर्म के समर्थक सम्राट् के आश्रित होते तो इन्होंने ऐसा दु:साहस कदापि न किया होता। इसलिये भास अशोक के समय में भी नहीं हो सकते।

(४) अशोक की मृत्यु के अनन्तर मौर्य कुल के सम्राट् शक्तिहीन हो गये थे। इसलिए उसके अंतिम राजा बृहद्रथ को पुष्यमित्र सेनापति ने मारा डाला और मगध पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराई। इस प्रकार मगध का राज्य शृङ्ग वंशियों के हाथ लगा। इनका राजत्व-काल ईसा से १८१ से १४८ वर्ष पूर्व तक माना जाता है।

अशोक के उत्तराधिकारियो की राज्य-शक्ति क्षीण हो गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से राजाओं ने अपनी स्वतत्रता घोषित कर दी। पंजाब उनके हाथ से निकल गया था। दक्षिण में उनका राज्य नर्वदा नदी तक ही रह गया था। 'मनीएडर ने' कठियावाड और सिन्धु देश को अपने अधिकार में करके चित्तौड और अयोध्या तथा पाटलिपुत्र तक अशान्ति उत्पन्न की थी, परन्तु पुष्यमित्र ने उसे हराया था। यह विजय अल्प-कालिक रही, क्योंकि लगभग उसी समय कलिंगाधीश 'खैर-वेल' ने मगध पर आक्रमण किया, और यहाँ पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराई। इसका प्रमाण हाथी गुम्फ की गुफा का शिलालेख है। यह घटना मौर्य संवत् १६४ की है।

इस समय अग्निमित्र ने विदर्भराज को परास्त करके अपना राज्य बढ़ाया था, और इसी विजय के उपलक्ष में पुष्यमित्र ने

राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किया था। इसमें भाष्यकार पातंजलि भी सम्मिलित थे। इससे सिद्ध होता है कि यह चक्रवर्ती सम्राट् रहा होगा। इसके राज्य में परचक्रभय का आभास तो अवश्य मिलता है, परन्तु वैसा भयंकर नहीं जैसा कि भास ने अपने नाटकों में कहा है। श्रीयुत गणपति शास्त्री जी का अनुमान है कि भास ने चाणक्य की रचना से कई भाव लिये हैं, और 'नवम् शरावम्' वाला श्लोक अविकल रूप से अपने 'प्रतिज्ञा योगन्धरायण' नाटक के चतुर्थ अङ्क मे रख दिया है, परन्तु यह तर्क उपयुक्त नहीं। भास उन स्वाभिमानी कवियों मे से थे जिन्होंने भगवद्गीता जैसे आदर्श ग्रन्थ के श्लोको को अपना रूप देकर ग्रहण किया है। तो भला वह चाणक्य के श्लोक को अविकल रूप से कैसे ग्रहण कर लेते? क्या वे इसी भाव को ऐसी सुन्दरता के साथ व्यक्त नहीं कर सकते थे? चाणक्य महाराज चन्द्रगुप्त के मंत्री थे। भास का चन्द्रगुप्त के समकालीन होना सिद्ध किया गया है। इसलिए भास और चाणक्य समकालीन भले ही न माने जा सकें, परन्तु इनमें शताब्दियों का अन्तर नहीं है।

श्रीयुत गणपति शास्त्री जी ने भास को भगवान पाणिनि से भी पहले माना है। वह भी केवल इस आधार पर कि उन्होंने पाणिनीय व्याकरण की अवहेलना की है, परन्तु यह तर्क समीचीन नहीं जँचता।

इतिहास विशारद श्रीयुत सर रमेशचन्द्र दत्त तो पाणिनि को अवश्य ईसा से ८वीं शताब्दी पूर्व का मानते हैं, परन्तु प्रोफेसर 'मोक्षमुलर' और 'वॉथलिक' महोदय इन्हे ईसा से चतुर्थ शताब्दी पूर्व का मानते हैं। यदि इन महानुभावो का मत प्रामाणिक माना जाय तो भास का समय ईसा से ३२५ वर्ष पूर्व माना जायगा;

क्योंकि किसी व्याकरणकार के द्वारा निर्धारित किये हुए भाषा के बन्धन रूप नियमों का सर्वतन्त्र प्रचार होने के लिए उस समय कम से कम इतने ही काल की आवश्यकता थी। बहुत सम्भव है कि भास ने प्रचलित भाषा का लोकरूढि प्रयोग बनाये रखने को ही पाणिनीय व्याकरण की अवहेलना की हो, क्योंकि उस समय संस्कृत लोक व्यवहार की भाषा थी। योरोपीय विद्वान् भी इस मत के समर्थक हैं। भास के नाटकों की भाषा कालिदास की भाषा के समान परिमार्जित एव परिष्कृत नहीं। वह उनके समय से सौ, डेढ सौ वर्ष पुरानी मालूम होती है। अत' इस भाषा को देख कर हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि यह ईसा से पूर्व तृतीय शतक की है।

इन कारणों मे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि भास ने चन्द्रगुप्त को राजसिंह कहा है। उनके काल की राजसीमा भास-निर्दिष्ट राजसीमा से अधिक मिलती है। पुष्यमित्र के राज्यकाल मे परचक्रभय नहीं था। अशोक बौद्धधर्मावलम्बी था। इसलिए उसने वैष्णव धर्मावलम्बी कवि भास को आश्रय दिया ही न होगा।

इनकी भाषा परिष्कृत नहीं है। उसमे नाटकीय कला का सुन्दर प्रदर्शन न होकर स्वाभाविकता, और सरलता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुशासन की अवहेलना भी कई स्थलों पर की गई है। इन बातों से सिद्ध होता है कि यह भाषा बौद्ध-धर्मप्रचार के प्रथम की है, और कविवर भास चाणक्य के समकालीन हैं तथा सम्राट् चन्द्रगुप्त ही को उन्होंने राजसिंह कह कर सागर-मेखला पृथ्वी पर राज्य करने का आशीर्वाद दिया है।

यह मत अलंकार-मूर्ति श्रीयुत सेठ कन्हैयालाल पोद्दार जी का है जिसको हमने विद्यार्थियों के सामने सूक्ष्म रूप से उपस्थित किया है।

इन आन्तर्य्य प्रमाणों के अतिरिक्त यदि हम भास और कालिदास की रचनाओ का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो हमे स्पष्ट प्रतीत होगा कि कालिदास के काव्यो मे भास के सुललित भावो का अविकल प्रतिविम्ब पडा है। कही-कही तो दोनो की भाषा तक मिल गई है। लेख के कलेवर वृद्धि के भय से हम उभय कवियों के समान भाव वाले छन्दो को उद्धृत नही करते क्योंकि इन कथानको को देखते हुए ऐसे आलोचनात्मक विवेचन की आवश्यकता नही प्रतीत होती है। भास के कालिदास पूर्ववर्ती होने के पक्ष मे प्रचुर प्रमाण उपलब्ध है।

स्वप्न-वासवदत्ता

मङ्गलाचरण

सवैया

नूतन चंद उदै समै को,
बरधोल छटानि की धारन वारी।
आसव के तिमि सेवन सों,
दोऊ लोयनि छाय रही अरुनारी॥
त्यों पद्मा के नजीक निवास सों,
पूरि रही रिधि सिद्धि हैं सारी।
साजे वसन्त सिंगारनि आन,
करै बलदेव की बाहु तुम्हारी॥

अवन्ती एक पुराण प्रसिद्ध नगर है। यहाँ के राजा का नाम चण्डमहासेन था। इनका विवाह राजकुमारी अंगारवती के साथ हुआ था। कालान्तर मे रानी के गर्भ से एक सर्व

लक्षण सम्पन्ना अनिंद्य सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम राजा ने वासवदत्ता रक्खा। यह कन्या प्रतिपच्चन्द्र के समान बढने लगी और अपने दयादाक्षिण्यादि गुणों से सब की प्यारी हुई। इसके दो भाई थे, जिनके नाम थे पालक और गोपालक।

महाराज चण्डमहासेन इसका विवाह वत्सराज उदयन के साथ करना चाहते थे। वत्स इस समय बडा सम्पन्न देश था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। वत्सनरेश को जामाता बनाने के अभिप्राय से महाराज चण्डमहासेन उदयन को उज्जयिनी लाये थे। वासवदत्ता को वीणा बजाने की बडी रुचि थी। उदयन भी वीणा वादन में बड़े निपुण थे। इसलिये राजाने वासवदत्ता को वीणा सिखाने के लिये इनके हाँथ सौंपा। तब से वासवदत्ता और उदयन में सानिध्य के कारण घनिष्टता होने लगी। यही घनिष्टता आगे बढ कर अनुराग के रूप में परिणत हो गई, और उसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि महाराज उदयन इसे कौशाम्बी भगा लाये। महा कवि कालिदास ने इस घटना का उल्लेख अपने मेघदूत मे इस प्रकार किया है —

सवैया

याही उजैनिमें भूप प्रद्योतकी
वासवदत्ता सुता सुकुमारी।
ताहि हरी हठि वत्स नरेसनै
नाम उदैन महा बल धारी।

छाँ हुते ताल सुवर्न के वर्ण के
छाई दियो गज खम्भ उपारी।
ऐसी कथानि तहां कहि लोग
प्रमोद बटोहिन को करे भारी।
—कमलेश जी

कौशाम्वी मे आकर उदयन वासवदत्ता के साथ आनन्द पूर्वक विलास प्रिय जीवन व्यतीत करने लगे। सच है संसार में ऐसे बहुत कम आदमी है जो कन्दर्प के तीव्र वाणों का प्रहार सहकर भी अपने उत्तरदायित्व से विमुख नहीं होते। वासव-दत्ता के प्रेम मे महाराज उदयन की यह दशा हुई कि उन्होंने अन्तःपुर से वाहर निकलना वन्द कर दिया। राज्य का सारा प्रवन्ध मंत्रियो के हाथ मे था। राजा की यह अनंगोपासना और उत्तरदायित्व-विमुखता मंत्रियो को अच्छी नहीं लगती थी। इसलिये उन्होने आपस मे परामर्श किया कि किस उपाय से महाराज को कार्य पथ पर आरूढ़ किया जाय। इस मार्ग मे सब से वड़ी आपत्ति वासवदत्ता थी, जिसके प्रेमपाश मे महाराज उदयन बुरी तरह से जकड़े हुए थे।

वासवदत्ता वड़ी बुद्धिमती स्त्री थी। महाराज से प्रगाढ़ प्रेम करते हुए भी वह प्रजा की मंगल कामना रखती थी और राज्य के कल्याण के लिये वड़े से वड़ा त्याग करने को तैयार थी। मंत्रियों ने उसे अपनी ओर मिला कर राज्य की मंगल कामना के लिये षडयंत्र रचा। इस समय मगधराज

दूसरे दिन राजा बड़े सवेरे ही मृगया के लिये गये, और एक विकट वाराह के पीछे उन्होंने अपना घोड़ा डाला। घोड़े की आहट पाकर वह वायुवेग से भगा। मध्यान्होत्तर का समय आ गया, परन्तु राजा उसके पीछे घोड़ा बढ़ाते चले जा रहे थे। राजा ने उसे लक्ष करके बड़े बड़े तीक्ष्ण बाण चलाये परन्तु उसके एक भी न लगा। अन्त में वह एक गहन वन मे घुस गया जहाँ पर घोड़ा जा ही नहीं सकता था। राजा के अन्य साथी तो पहिले ही लौट आये थे। अपने प्रयास में असफल होने के कारण महाराज उदयन भी खिन्न हो कर सन्ध्या के समय लौटे। ज्यो ही महाराज ने शिविर की ओर घोड़े की वाग मोड़ी त्यो ही उनका वाम नेत्र स्पन्दन करने लगा। सव्य भुजा के फड़कने से महाराज का हृदय भावी अनिष्ट की आशंका से दहल गया। मृगयाश्रम और भग्नप्रयास होने के कारण खिन्न महाराज बड़ी शीघ्रता पूर्वक अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चल पड़े। ज्यो ज्यों वह उस स्थान के निकट आते जाते थे त्यो त्यो उनका हृदय अधीर होता जाता था। अन्त मे बड़ा धैर्य धर के महाराज अपने शिविर के निकट आये तो भस्मावशेष निवास को देख कर उन्हें पता चला कि अवश्यमेव यहाँ अग्नि काण्ड हो गया है और उसमे सारा शिविर जल गया है। राजा इस अग्नि काण्ड का कारण जानने के लिये ग्राम की ओर बढ़े तो उन्हें पता चला कि महारानी वासवदत्ता और अमात्यप्रवर यौगन्धरायण दोनो ही ज्वाल माला मे जल कर भस्म हो गये। यह समाचार सुन

'दर्शक' की भगिनी राजकुमारी पद्मावती विवाह वयस्का हो चुकी थी। उसके सद्गुणता और सुशीलता लोक विख्यात थीं। मन्त्रियो ने सोचा कि यदि किसी चाल से उदयन का विवाह पद्मावती से हो जाय तो मगध राज से विरोध मिट जायगा और वत्सराज्य का भी यथेष्ट विस्तार होगा। परन्तु एक रानी के रहते हुये महाराज दर्शक, भला पद्मावती को उदयन के हाथ देने के लिये कैसे तैयार होगे। इसलिये मन्त्रियों ने वासवदत्ता को दूर करना निश्चित किया। जब उससे इस सम्बन्ध में परामर्श किया गया तब वह सहर्ष इस कार्य के लिये तैयार हो गई। धन्य है वासवदत्ता के निस्वार्थ प्रेम और लोक हितैषिणा को !

एक दिन महाराज उदयन आखेट के लिये जगल को गये। यहाँ उन्हे मृगयाविनोद मे बहुत देर लग गई, इसलिये उन्होने यहीं वन प्रदेश के निकटवर्ती लावाणक नामक ग्राम में ही रहना निश्चित किया। महारानी वासवदत्ता भी मृगया विहार का आनन्द लेने के लिये महाराज के साथ गई थी। मन्त्री यौगन्धरायण ने वासवदत्ता से कहा कि अब कार्य करने का समय आ गया, आप तैयार रहे। रानी ने कहा कि राज्य के कल्याण के लिये मैं सब कुछ करने के लिये तैयार हूँ। स्नेह, दया, सुख और यहाँ तक कि महाराज को भी यदि प्रजा के अनुरजनार्थ त्यागने की आवश्यकता पडेगी तो मुझे व्यथा न होगी। मन्त्री रानी के लोकोत्तर त्याग की प्रशसा करता हुआ चला गया।

दूसरे दिन राजा बड़े सवेरे ही मृगया के लिये गये, और एक विकट वाराह के पीछे उन्होंने अपना घोड़ा डाला। घोड़े की आहट पाकर वह वायुवेग से भगा। मध्यान्होत्तर का समय आ गया, परन्तु राजा उसके पीछे घोड़ा बढ़ाते चले जा रहे थे। राजा ने उसे लक्ष करके बड़े बड़े तीक्ष्ण बाण चलाये परन्तु उसके एक भी न लगा। अन्त मे वह एक गहन वन मे घुस गया जहाँ पर घोड़ा जा ही नहीं सकता था। राजा के अन्य साथी तो पहिले ही लौट आये थे। अपने प्रयास मे असफल होने के कारण महाराज उदयन भी खिन्न हो कर सन्ध्या के समय लौटे। ज्यो ही महाराज ने शिविर की ओर घोड़े की बाग मोड़ी त्यो ही उनका वाम नेत्र स्पन्दन करने लगा। सव्य भुजा के फड़कने से महाराज का हृदय भावी अनिष्ट की आशंका से दहल गया। मृगयाश्रम और भग्नप्रयास होने के कारण खिन्न महाराज बड़ी शीघ्रता पूर्वक अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चल पड़े। ज्यो ज्यो वह उस स्थान के निकट आते जाते थे त्यो त्यो उनका हृदय अधीर होता जाता था। अन्त मे बड़ा धैर्य धर के महाराज अपने शिविर के निकट आये तो भस्मावशेष निवास को देख कर उन्हे पता चला कि अवश्यमेव यहाँ अग्नि काण्ड हो गया है और उसमे सारा शिविर जल गया है। राजा इस अग्नि काण्ड का कारण जानने के लिये ग्राम की ओर बढ़े तो उन्हें पता चला कि महारानी वासवदत्ता और अमात्यप्रवर यौगन्धरायण दोनो ही ज्वाल माला में जल कर भस्म हो गये। यह समाचार सुन

कर उदयन के ऊपर वज्रपात सा हुआ। दारुण शोकावेग का भार अपने हृदय में रख कर वे कौशाम्बी लौट आये और बडी कठिनता से राज्य कार्य देखने लगे।

उधर यौगन्धरायण पूर्व निश्चय के अनुसार वासवदत्ता को लेकर मगध की ओर चल पड़े। दोनों ही ने योगियों का भेप धारण कर लिया जिससे कोई उन्हें पहिचान न ले। वासवदत्ता ने अपना नाम अवन्तिका रक्खा।

(१)

यौगन्धरायण और वासवदत्ता सन्यासी का भेष धारण किये हुए वन मे पहुँचे ही थे कि उनके कानो में राजपुरुषों के "हठो, वचो" के शब्द सुनाई पडे। इसे भली भाँति सुन कर यौगन्धरायण ने कहा कि शान्तिमय तपोवन मे भी नगर की-सी हल चल मालूम होती है। इतने ही मे कचुकी आ गया और उसने सिपाहियों से कहा कि देखो यह नगर नहीं है जहाँ तुम अपना आतक दिखलाया करते थे। यह है तपोवन ! यह तपस्वी सारे ससार के ऐश्वर्य को लात मार कर ईश्वर का चिंतन करने के लिए इस शान्तमय स्थान में आकर रहे हैं। यहाँ भी तुम उनके साथ नगर-निवासियों का-सा वर्ताव करते हो ! इसमें केवल तुम्हारी ही नहीं, राजा की भी अपकीर्ति है। कचुकी की डाट सुन कर राजपुरुप चले गये।

यौगन्धरायण कौतूहल-वश कचुकी के पास जाकर पूछने

लगा कि आज इस तपोवन मे चहल-पहल का क्या कारण है। उसने उत्तर दिया कि आज हमारे महाराज दर्शक की वहिन राजकन्या पद्मावतीजी अपनी माता महारानी महादेवी से मिलने आई थीं, जो आजकल इसी वन मे निवास करती हैं। उनकी आज्ञा लेकर अब राजकन्या महोदया राजगृह को जा रही हैं। आज वे इसी वन मे विश्राम करेंगी, इसीलिए आज यहाँ इतनी चहल-पहल हो रही है। आप लोगो को भी जो कुछ आवश्यकता हो वह राजकन्या से माँग लावे। तपोवन की प्रतिष्ठा का ध्यान उन्हे सदा वना रहता है। वे इसके नियमो की अवहेलना कभी नहीं करती।

थोड़ी देर के वाद पद्मावती अपनी सहेलियों और परिचारिकाओं के साथ उसी ओर आ निकली। एक तपस्विनी ने हाथ उठा कर राजकन्या को आशीर्वाद दिया। पद्मावती ने हाथ जोड़कर उसका अभिवादन किया। तपस्विनी ने एक दासी से पूछा कि क्या राजकन्या के विवाह की वातचीत भी कहीं से हुई है। दासी ने कहा कि हाँ, इसकी वातचीत उज्जयिनी नरेश महाराज प्रद्योत के पुत्र के साथ हो रही है।

पद्मावती ने तपस्विनी से कहा कि आप अन्य तपस्वियों से कह दे कि जिसे जिस किसी वस्तु की आवश्यकता हो वह मेरे पास आकर ले जाय। कंचुकी ने राजकुमारी की आज्ञा से आश्रम भर मे उक्त घोषणा कर दी।

यौगन्धरायण को ऐसी घोषणा सुनकर वड़ी प्रसन्नता हुई।

वह पद्मावती के पास गया और कहने लगा कि राजकुमारीजी मुझे कुछ चाहिये, यदि आप देने को कहें तो कहूँ। मैं आपसे कुछ धन नहीं चाहता और न कोई ऐसी-वैसी वस्तु चाहता हूँ। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि आप थोड़े दिन के लिए मेरी भगिनी को अपने यहाँ आश्रय दें, क्योंकि इसका पति परदेश गया है। वह जब लौटकर आजायगा तब यह चली जायगी। मैं तीर्थाटन के लिए बाहर जाता हूँ। आशा है कि आप मेरी परोपकार निष्ठ छोटी सी याचना पूर्ण करेंगी। राजकुमारी तो उसकी याञ्चा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर चुकी थी इसलिए उसने कहा अच्छा आप इसे सहर्ष मेरे पास छोड जाइये। यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को पद्मावती के हवाले किया और आप उनकी रक्षा के भार से एक प्रकार से मुक्त हुआ।

इतने ही में एक विद्यार्थी उस ओर आया। मध्याह्न होगया था इसलिए उसने वहीं विश्राम करना निश्चित किया। हरिण शावकों को नि शक चरते हुये देखकर तथा फलभार से नमित वृक्ष शाखाओं को देखकर उसने अनुमान किया कि वहाँ निश्चय ही कोई तपोवन होगा। यह अनुमान करके विद्यार्थी ने ज्यो ही वन मे प्रवेश किया त्यो ही यौगन्धरायण से उसकी भेंट हुई। पूछने से विद्यार्थी ने कहा कि मैं इस समय राजगृह से आरहा हूँ। मै वत्सदेश मे लावाणक नामी ग्राम में वेदाध्ययन करता था परन्तु हाल मे वहाँ पर एक भयकर दुर्घटना हो गई है। वत्सराज उदयन अपनी रानी वासवदत्ता के साथ वहीं आखेट

करने आये थे। रात्रि को उन्होंने वहीं विश्राम किया। राजा दूसरे दिन मृगया के लिए बाहर निकल गये। उनकी अनुपस्थिति मे ग्राम मे भयंकर अग्निकांड हुआ, जिसमे यौगन्धरायण और वासवदत्ता दोनों भस्म हो गये। मृगया से लौट आने पर राजा भी अग्नि में जल कर अपना प्राण परित्याग करना चाहते थे परन्तु मन्त्रियों ने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर रोका।

यद्यपि यौगन्धरायण और वासवदत्ता दोनों ही वास्तविकता से परिचित थे तथापि उन लोगों ने लोकाचार के लिए राजा के साथ समवेदना प्रगट की। अन्त मे विद्यार्थी ने अपना रास्ता लिया। यौगन्धरायण भी चलता बना और पद्मावती सन्ध्या के समय कंचुकी के साथ राजमन्दिर मे चली आई।

(२)

दूसरे दिन से ही पद्मावती का वासवदत्ता के साथ बड़ा स्नेह होगया। राजकुमारी उनका बडा सन्मान करती थी। एक दिन वह गेंद खेलते-खेलते माधवी लता मंडप मे जा पहुँची। प्रसंगवश वासवदत्ता ने महासेन के पुत्र के साथ उनके विवाह की चर्चा की। इस पर दासी ने कहा कि हमारी राजकुमारी उनके साथ विवाह न करेगी क्योंकि वह इस समय वत्सराज उदयन के गुणों पर मुग्ध होकर उन्हे अपना पति बनाना चाहती है। इतने ही मे पद्मावती की धात्री ने आकर उन्हें सूचना दी कि आपका विवाह वत्सराज उदयन के साथ ठीक हो गया है। वे यहाँ एक विशेष कार्य वश आये थे और महाराज के प्रस्ताव पर उन्होंने

विवाह करना स्वीकार कर लिया है। इसलिए जल्दी चलिये। महारानी की आज्ञानुसार आज ही आपके कंकण बाँधा जायगा।

(३)

पद्मावती अपनी धात्री के साथ महाराणी के पास चली गई। इधर वासवदत्ता अपने शोकावेग को शान्त करने के लिये प्रमोद वन में चली आई। इतने ही मे उसके पास एक दासी कुछ फूल लेकर आई और कहने लगी कि आप पद्मावती के लिये जयमाला बनादें। राजकुमारी अभी मणिमन्दिर में स्नान कर रही हैं। माला तुरन्त बना दीजिये। दासी इस प्रकार अवन्तिका से माला बनाने के लिये कह ही रही थी कि दूसरी परिचारिका वहाँ आई और कहने लगी कि माला अभी ले चलो, महाराणी मँगा रही हैं। वासवदत्ता को अपनी सपत्नी के लिए माला गूथना इतना ही दुष्कर हुआ होगा जितना कि नल का दमयन्ती के आगे देवताओं की वकालत करना।

(४)

कुछ समय के अनन्तर पद्मावती अपनी परिचारिकाओं के सहित प्रमोद वन मे आई और उसकी दासियाँ प्रसून सचय करने लगी। जब दासियों ने बहुत से फूल इकट्ठा कर दिये तो पद्मावती ने उन्हे यह कह कर निवारण किया कि महाराज रुष्ट हो जायँगे इसलिये अधिक फूल लाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस पर वासवदत्ता ने राजकुमारी से पूछा कि आप महाराज से बहुत प्रेम करती हुई मालूम होती हैं। दासी ने भी

उसकी उक्ति का समर्थन किया। इस पर पद्मावती ने कहा ऐसा तो नहीं है, परन्तु उनकी अनुपस्थिति में न जाने मुझे क्यो खिन्नता आकर घेर लेती है और मैं ऐसी अन्यमनस्का हो जाती हूँ कि मुझसे कुछ करते धरते नही बनता। ऐसा कह कर उसने अवन्तिका से पूछा कि क्या महारानी वासवदत्ता भी महाराज से उतना ही प्रेम करती थी जितना मैं करती हूँ? अवन्तिका ने कहा उतना ही नहीं प्रत्युत उससे भी अधिक। यदि ऐसा न होता तो वह अपने माता पिता एवं अन्य आत्मीय जनों को छोड़ कर वत्सराज के साथ कैसे चली जाती।

अब दूसरा प्रसंग छिड़ा। परिचारिका ने पद्मावती से कहा कि एक दिन महाराज से अवसर पाकर वीणा सीखने के विषय मे आज्ञा माँगना। राजकुमारी ने उत्तर दिया कि एक दिन मैंने पहिले ही उसके लिये आज्ञा माँगी थी परन्तु उन्होंने उत्तर मे कुछ भी न कहा, और भीषण विषाद की मुद्रा उनके मंजुल मुख पर अंकित हो गई। मैं तो यह अनुमान करती हूँ कि महाराज को उस समय वासवदत्ता का स्मरण हो आया होगा, सम्भव है कि उसे वीणा बहुत प्रिय हो। मेरे समक्ष महाराज अपना शोकावेग दबाये रहे, और यदि मैं वहाँ पर न होती तो बहुत सम्भव था कि उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती।

इसी समय वत्सराज और उनके मित्र वसंतक वहाँ आ गये। राजा प्रकृति की शोभा देख कर कहने लगे कि हे मित्र ऐसा ही रमणीक समय था जब मैं अवन्ती मे वासवदत्ता को

देखने गया था और उसके प्रथम दर्शन से ही तन, मन, धन सब उन्हें अर्पण कर चुका था। वसंतक राजा की बातों का उत्तर न देने पाया था कि पद्मावती की दृष्टि महाराज की ओर पड़ी और वह लज्जा के मारे मल्लिकानिकुञ्ज की ओर चली गई। उस समय बडी कडी धूप पड रही थी। इसलिये वसंतक ने महाराज से कहा कि चलो हम लोग भी चल कर किसी सघन-लता कुञ्ज में विश्राम करें। यह कह कर दोनों ही उस ओर चल पडे। उन्हें अपनी ओर आते हुए देख कर चतुर परिचारिका ने कहा कि हे राजकुमारी कहो तो अभी उस मजरी मण्डित रसाल शाखा को हिला कर इन्हे रोक दूँ जिस पर चारों ओर से रोलाम्बावली झंकार कर रही है। राजकुमारी न दासी से कहा बहुत अच्छा ऐसा ही करो।

फिर क्या था परिचारिका ने रसाल शाखा प्रकम्पित की और भ्रमरावली वसतक पर टूट पडी। उन्होंने चिल्ला कर महाराज से कहा कि आप यहाँ न आइयेगा अन्यथा आपको भी कष्ट होगा। महाराज ने उत्तर दिया कि जो हुआ सो हुआ इन भ्रमरो के विरुद्ध तुम रोपावेश में आकर कहीं सग्राम न ठान देना, नहीं तो हमारी भाँति इनको भी अपनी प्रियतमाओ से वियोग हो जायगा। राजा के निवारण करने पर वसतक भ्रमरो से नहीं लडे, प्रत्युत महाराज के पास वहीं आकर बैठ गये। उन्होने महाराज से पूछा कि आप दोनों रानियो मे से किससे अधिक प्रेम करते है। महाराज ने कहा कि दया-

दाक्षिण्यादि गुणों से यद्यपि पद्मावती ने मेरे हृदय पर पूर्ण अधिकार कर लिया है तो भी वासवदत्ता की ओर से मेरा अनुराग शिथिल नहीं होता।

यह कह कर महाराज वासवदत्ता का स्मरण करके फिर खिन्न हो गये। वसंतक ने उन्हे बहुत कुछ धैर्य दिलाया परन्तु वह भली भाँति महाराज का शोकापनोदन न कर सका। इतने ही में पद्मावती ने अवन्तिका से कहा कि इस समय आश्रु-पूर्ण विलोचन होने के कारण महाराज हमे देख न सकेंगे इसलिये गुप्त रूप से निकल चलने का यह बड़ा ही अच्छा अवसर है। वासवदत्ता ने कहा ऐसा उचित नहीं, महाराज को इस शोकावस्था मे यहाँ पर अकेला छोड़ देना अच्छा नहीं। इसलिये आप महाराज के पास जायँ, मैं अकेली ही चली जाऊंगी। परिचारिका ने भी अवन्तिका के प्रस्ताव का समर्थन किया।

पद्मावती कमल पत्र मे जल लेकर राजा के पास पहुँची। उन्होंने उससे अपना मुँह धोया। अन्त मे महाराज ने पद्मावती को अपने निकट बैठने की आज्ञा दी। उन्हे सन्देह होने लगा कि ऐसा न हो कि कहीं इसने वासवदत्ता का प्रसंग सुन लिया हो। इसे सुनने से इसके हृदय मे दुःख अवश्य होगा। इस विचार से उन्होंने अपने मुख धोने का कारण बतलाया और कहा कि हे सुन्दरी! तुम्हें कदाचित इस बात से आश्चर्य हुआ होगा कि मैंने असमय अपना मुँह क्यों धोया। इसका कारण यह था कि हवा ने जिस समय काँस के फूलों को

विदलित किया उस समय उनकी मकरद उड कर मेरे नेत्रों में पड गई जिससे अविरल अश्रुधारा के प्रवाह से मेरा सारा मुख भीग गया। अत उसकी विवर्णता को मिटाने के लिये मुख धोने के सिवाय और कोई उपाय ही न था।

वत्सराज और पद्मावती में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि वसतक ने महाराज से आकर कहा कि आज मगध-राज मध्याह्नोत्तर में अपने कतिपय मित्रों से आपका परिचय करावेंगे, अत आप चलें। यह कह कर राजा को साथ लेकर वह चला आया।

(५)

एक दिन अचानक राजकन्या पद्मावती के सिर मे बडी पीडा होने लगी। उन्होंने अवन्तिका को इसलिये अपने निकट बुलाया कि वह सुमधुर एव रोचक कहानियॉ कह कर उनका मन बहलावे। इस बात का समाचार उदयन को भी मिला। राजा तत्काल उसे देखने के लिये चल पड़े। पूछने से उन्हें पता लगा कि पद्मावती उस समय नीले कमरे में होगी। महाराज वसतक के साथ नीले कमरे में गये, परन्तु उन्होंने पद्मावती को वहॉ न पाया। वसतक ने कहा कि महाराज थोड़ी देर तक आप यहीं बैठ कर प्रतीक्षा करे, पद्मावती आती ही होगी। मैं आपके मनोविनोद के लिये एक रोचक कहानी सुनाता हूॅ। वसंतक ने ऐसी असगत कथा प्रारम्भ की कि जिसे सुन कर महाराज को उसके अनर्गल प्रलाप पर उसे कई बार रोकना

पड़ा। अन्त मे वह अपनी रजाई लेने के बहाने वहॉ से चला आया।

इतने ही मे एक दासी के साथ अवन्तिका वहॉ पर आई और उससे पूछने लगी कि क्या नीला कमरा यही है ? पद्मावती का पर्य्यंक कहॉ बिछा हुआ है ? दासी ने उत्तर दिया—राजकुमारी इसी में है, आप चलिये, मैं अभी मस्तक-प्रलेप लिये आती हूँ।

वासवदत्ता ने नीले कमरे मे पदार्पण किया और देखा कि शैया पर वह अकेली लेटी हुई है। उस समय उसको दासियो की धृष्टता पर बड़ा क्रोध आया कि वे पद्मावती को रुग्णावस्था मे अकेली छोड़ कर कैसे चली गईं, परन्तु उस को निद्रित अवस्था मे पाकर उसे कुछ सन्तोष लाभ हुआ। पहिले तो उसने अलग बैठना चाहा, परन्तु इस विचार से कि कुमारी अलग बैठने से कहीं रुष्ट न हो जाय, वह उसी पर्यंक पर बैठने को तैयार हुई। पर्यंक पर बैठते ही वासवदत्ता का गात्र कण्टकित हो आया। हर्षावेग मे उसे मालूम होने लगा कि मानो पद्मावती की व्यथा कुछ कम हो रही है। इसलिये वह राजकुमारी को प्रेमालिङ्गन करने के लिये पर्यंक पर ही एक ओर लेट रही।

वासवदत्ता ने अभी निद्रित व्यक्ति के सिर से चद्दर नहीं उतारी थी, अन्यथा सारे रहस्य का उद्घाटन हो गया होता। यह पद्मावती न थी। यह थे महाराज उदयन, जो पद्मावती की प्रतिज्ञा करते करते नीले कमरे मे उसी के पर्यंक पर सो गये थे। अचानक राजा ने स्वप्न मे वासवदत्ता को देखा और कहने लगे

कि हा अवन्तिकुमारी ! बोलती क्यों नहीं, क्या रुष्ट हो गई ? मुझे क्षमा कर दो, और यह कह कर उन्होंने अपने हाथ फैलाये।

चिरपरिचित शब्दों को सुन कर वासवदत्ता की मोह निद्रा भंग हो गई। उसने जान लिया कि यह तो महाराज उदयन हैं जो स्वप्न में कुछ वड़ बडा रहे हैं। इस विचार से तत्काल वह पर्यंक छोड़ कर अलग खड़ी हो गई कि कहीं ऐसा न हो कि महाराज मुझे पहिचान लें तो अमात्यप्रवर यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा भग हो जाय। फिर उसने सोचा कि यदि मैं यहाँ अधिक देर तक ठहरी और किसी ने इस रहस्य को जान लिया तो और भी धर्म सकट में पड जाऊँगी। इससे यहाँ से चलना ही अच्छा है। इन भावों से प्रेरित हो कर वासवदत्ता वहाँ से चली आई।

इतने ही में वसंतक वहाँ पहुँच गये। राजा की निद्रा भग हो गई और उन्होने उससे कहा कि वासवदत्ता अवश्य जीवित हैं। उसे मैंने अभी देखा है। रुमण्वान मंत्री ने मुझे अवश्य धोखा दिया। देखो मेरा यह वाहु अव तक रोमाचित हो रहा है जिसे उसने घवराहट में कस कर पकड लिया था। वसतक ने कहा कि यह तो आपका भ्रम है। वासवदत्ता को दिवगत हुये वहुत समय वीत गया। यहाँ पर अवन्तिका नाम की एक देवाङ्गना रहती है, उसे आपने अवश्य देखा होगा। इतने ही में कचुकी ने आकर वत्सराज को महाराज दर्शक का सन्देश सुनाया कि आपके मत्री रुमण्वान ने आरुणी पर आक्रमण

कर दिया है। राजा ने कहा बड़ा अच्छा, मैं भी अपना रण कौशल दिखलाऊँगा। यह कह कर सब चले गये।

(६)

महाराज उदयन कौशाम्बी को लौट आये और बड़े आनन्द से वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन महाराज राजमंदिर मे बैठे हुए थे कि कंचुकी ने आकर निवेदन किया कि अवन्ती नगरी से महाराज चण्डमहासेन का भेजा हुआ रैभ्यस नामधेय कंचुकी और महाराणी अंगारवती की भेजी हुई वसुन्धरा नाम्नी वासवदत्ता की धात्री कुछ सन्देश लेकर आये है और महाराज से मिलने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। प्रतिहारी ने इसके उत्तर में कहा कि यह सन्देश कहने का अनुकूल अवसर नही है, क्योकि पूर्वीय प्रासाद मे वीणा की मधुर ध्वनि को सुन कर आज महाराज को अचानक यह स्मरण हो आया कि कोई वासवदत्ता की घोषवती वीणा बजा रहा है।

उस ध्वनि का अनुसरण करते करते वह वहीं पहुँच गये और उन्होंने उससे पूछा, यह वीणा तुम्हे कहाँ मिली? उसने उत्तर दिया कि इसे मैंने नर्मदा नदी के निकट एक झाड़ी मे पाया था, परन्तु यदि आप चाहे तो इसे ले सकते हैं। महाराज ने वीणा अपने हाथ मे ले ली, परन्तु उसे देखते ही वे अगाध शोक सागर में निमग्न हो गये। मूर्छा के व्यतीत होने पर महाराज कहने लगे कि हे घोषवती! मैंने तुझे तो प्राप्त कर लिया परन्तु तेरी बजाने वाली को अब तक न पाया।

यह कह कर प्रतिहारी ने कहा कि महाराज के शोकावेग मे होने के कारण मैं तुम्हारे समाचार के निवेदन करने का यह उपयुक्त अवसर नही समझती। कचुकी ने उत्तर दिया कि अरे मै वीणा से सम्बन्ध रखने वाला ही समाचार लाया हूँ, जल्दी मे जाकर महाराज से कह दो। प्रतिहारी ने कहा अच्छा अभी जाती हूँ। देखो महाराज इधर ही आ रहे हैं। भीतर जाकर उसने महाराज से कचुकी का समाचार कह सुनाया।

राजा ने कहा कि अच्छा पद्मावती को भी यही बुला लाओ। प्रतिहारी पद्मावती को बुला लाई। राजा ने उससे कहा कि आज वासवदत्ता की धात्री और उनके पिता का कचुकी कुछ समाचार लेकर आया है। चल कर उनसे भेंट करना चाहिये। पद्मावती ने उत्तर दिया कि बहुत अच्छा। आपकी आज्ञा पालन करूँगी, परन्तु सकोच इतना ही होता है कि वे लोग मुझे वासवदत्ता की सपत्नी समझ कर कहीं बुरा न माने। राजा ने कहा कि इसमे बुरा मानने की तो कोई बात नही है तुम आनन्द मे बैठो। पद्मावती राजा की आज्ञा पाकर वही बैठ गई।

कचुकी और धात्री दोनों ही राजा के सामने बुलाये गये। कचुकी ने महाराज को अभिवादन करके कहा कि मगधराज ने आपका कुशल समाचार पूछा है और कहा है कि आपने शत्रुओ से अपनी भूमि छीन ली इससे वे बडे प्रसन्न हैं। आपके वीरोचित कार्य से उन्हे बडा सन्तोष हुआ है। राजा ने उत्तर दिया कि यह सब महाराज महासेन के अनुग्रह का परिणाम है। मैंने तो

उनका एक प्रकार से अपकार ही किया। वासवदत्ता का अपहरण करके भी मै उसे मृत्यु के मुख से न बचा सका। अपनी दुहिता की मृत्यु सुन कर भी महाराज मुझे पूर्ववत मानते रहे और उन्हीं की सहायता से मैं अपने देश को शत्रुओ के पंजे से छुड़ा सका हूँ, इसके लिये मैं महाराज के लिये कहाँ तक कृतज्ञता प्रकाशित करूँ।

अब धात्री वसुन्धरा ने महाराणी अंगारवती का सन्देश सुनाना आरम्भ किया और कहा कि यद्यपि वासवदत्ता अब इस असार संसार मे नहीं है तो भी महाराणी का निर्व्यूढ़ अपत्य स्नेह अब भी आपकी ओर वैसा ही है। उन लोगो ने तो आपको वासवदत्ता को प्रदान करने का निश्चय कर ही लिया था और इसी विचार से आपको उज्जयिनी लाकर वीणा सिखाने के व्याज से वासवदत्ता को आपके हाथ सौंप दिया था, परन्तु बाल चपलता वश आप विवाह से पूर्व ही उसे लेकर भाग खड़े हुए। तब महाराणी ने तुम दोनो का चित्र बनवा कर विवाह करवा दिया था. वासवदत्ता का वह चित्र मैं लाई हूँ इसे लीजिये।

पद्मावती ने वह चित्र धात्री के हाथ से ले लिया और उसे ध्यानपूर्वक देख कर वह महाराज से पूछने लगी कि क्या यही वासवदत्ता का सच्चा चित्र है। महाराज ने कहा कि चित्र ही नहीं यह वासवदत्ता की प्रत्यक्ष मूर्ति है। पद्मावती ने कहा कि महाराज यह चित्र मेरी अवन्तिका से मिलता है। उन्हे मेरे विवाह के पूर्व एक संन्यासी मेरे पास यह कह कर छोड़ गया

था कि यह मेरी बहिन है और इसका पति परदेश गया है। जब तक वह लौट कर न आवे तब तक आप इसकी रक्षा करें। राजा ने उपेक्षा करते हुए कहा कि इस संसार में बहुत से आदमियों की रूपरेखा परस्पर मिलती हैं। यदि ऐसी स्त्री आपके यहाँ हो तो कौन से आश्चर्य की बात है। परन्तु उसे तो आप सन्यासी की बहिन बतलाती हैं अत वह अवश्य कोई दूसरी स्त्री होगी।

राजा और पद्मावती मे इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था कि प्रतिहारी ने आकर सूचना दी कि महाराज द्वार पर एक ब्राह्मण आया है और कहता है कि मैं अपनी बहिन को राजकन्या पद्मावती के पास छोड़ गया था। अब मैं उसे लेने आया हूँ। राजा ने कहा कि उसे बुला लाओ और साथ ही पद्मावती को आज्ञा दी कि तुम भी अपनी सखी को बुला लाओ। मुझे जान पडता है कि यह वही ब्राह्मण है जिसके सम्बन्ध मे तुमने अभी मुझ से कहा था। पद्मावती अवन्तिका को बुला लाई और प्रतिहारी यौगन्धरायण को राजा के सामने ले गई। राजा ने कहा कि सन्यासी जी की धरोहर को इनके हवाले करो, परन्तु अच्छा तो यह है कि कई आदमियो के सामने वह इन्हे लौटाई जाय, इसलिये महाराज चण्डमहासेन के कचुकी, रैभ्यस और धात्री वसुन्धरा को भी बुला लो।

राजा की आज्ञानुसार सब लोग बुला लिये गये। धात्री अवन्तिका की ओर दृष्टि पात करके सहसा बोल उठी

कि यह तो कुमारी वासवदत्ता है। यौगन्धरायण ने कहा कि नहीं नहीं यह मेरी बहन है। राजा ने कहा कि मुझे भी कुछ धोखा हो रहा है। यह अवश्य चण्डमहासेन की कन्या है, अतः इसे अंतःपुर मे पहुँचाओ। यौगन्धरायण कहने लगे कि पराई बहन को बरबस अंतःपुर मे डाल लेना कहाँ का न्याय है। भरत वंशावतंश महाराज को यह शोभा नहीं देता। राजा ने जब बद्ध दृष्टि होकर अवन्तिका की ओर देखा तब तो उनका सन्देह जाता रहा और उन्होने कहा यही प्राणाधिका वासवदत्ता है. इसमे कोई सन्देह नहीं।

यौगन्धरायण महाराज के चरणो पर गिर पड़ा महाराज ने उठा कर उसे छाती से लगाया और कहा कि आप ऐसे मंत्री धन्य हैं, जो कष्ट के समय मे अपूर्व त्याग दिखा कर राज्य की सहायता करते है। फिर उन्होने पूछा कि अच्छा मंत्री जी रानी को छिपाने मे तुम्हारा क्या अभिप्राय था और फिर उन्हे पद्मावती के हाथ क्यो सौंपा गया था। यौगन्धरायण ने उत्तर दिया कि यह सब हमने कौशाम्बी की रक्षा के लिये ही किया था। पद्मावती के साथ आपके विवाह के सम्बन्ध मे ज्योतिषियों ने पहिले ही से भविष्य वाणी कर रक्खी थी। अतः मैंने वासवदत्ता की सच्चरित्रता की साक्षी बनाने के लिये ही इसे पद्मावती के पास रक्खा था और इसका हाल सब मंत्रियों को मालूम था। राजा ने कहा कि रुमण्वान भी बड़ा धूर्त है। इसने अब तक हमे इस बात का पता न लगने दिया।

पद्मावती वासवदत्ता के चरणों पर गिर पडी और विनय पूर्वक कहने लगी कि अन जाने ही मैंने आपको अपनी सखी बनाया। मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये। वासवदत्ता ने कहा कि यह तो होना ही था इसमें सकोच की कोई बात नहीं। इतने मे यौगन्धरायण ने कहा कि वासवदत्ता की प्राप्ति का शुभ समाचार महाराज चण्डमहासेन को पहुँचाने के लिये वसुन्धरा और रैभ्यस आज ही अवन्ती को जाना चाहते है, इसलिये इन्हे रोकिये नहीं। राजा ने कहा यही नहीं हम लोग भी चलेंगे। रानी पद्मावती भी वासवदत्ता के साथ अवन्ती को चलेंगी। यह कह कर सब लोगो ने अवन्ती को प्रस्थान किया।

प्रतिमा

(१)

देवासुर संग्राम मे महाराज दशरथ ने इन्द्र का पक्ष लेकर दैत्यों को सदा के लिये परास्त कर दिया, और सुरेन्द्र से इस विजय के उपलक्ष मे सम्मान पाकर वे सानन्द अयोध्या को लौट आये। यहॉ आकर उन्हे अपने वार्धक्य का दुखद अनुभव होने लगा। इसीलिये वे अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करके आप वन जाने को तैयार हुए।

लोग राज्याभिषेक समारोह मे लगे हुए थे कि नेपथ्य की संरक्षिका रेवा से वैमनस्य रखने के कारण अवदातिका नाम की एक सेविका गुप्त रूप से वल्कलवस्त्र चुरा लाई, और उन्हे अन्य परिचारिकाओं को दिखला ही रही थी कि इतने मे वैदेही उधर आ निकली। अबला-सुलभ चंचलता के कारण उन्होंने वह वल्कल वस्त्र परिचारिका से लेकर स्वयम् धारण कर लिये। वास्तव में निसर्ग सुन्दर शरीर धारियो की शोभा समृवर्धन के

है। जब मेरा अर्द्धाङ्ग वल्कल धारण कर चुका तो अवशिष्ट अर्द्धाङ्ग के वल्कल धारण करने में कौनसी आपत्ति दिखाई पडती है।

मैथिली और रामचन्द्र जी में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था, कि अन्त पुरवर्तिनी महिलाओं का करुण क्रन्दन सहसा उनके कर्णगोचर हुआ, जिससे उन्होंने अनुमान कर लिया कि निसर्ग निर्दय विधाता ने अयोध्या के मनोरथ मूल पर वज्राघात किया होगा। थोडी देर मे उन्हें पता लगा कि महाराज दशरथ की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है, और इसका कारण हैं महारानी कैकेयी, जिसकी कुटिल मत्रणा के कारण उनका राज्याभिषेक स्थगित कर दिया गया था। कुछ परिचारिकाये कैकेयी की इस कुटिल नीति की निन्दा कर रही थी। यह रामचन्द्र जी को अच्छा न लगा, और उन्होंने कहा कि आप लोग पक्षपात पूर्ण बुद्धि से प्रेरित होकर ऐसा कह रही हैं। सुना है महाराज ने अपना विवाह कैकेयी के साथ इसी प्रतिबन्धक पर किया था कि उनका औरस पुत्र राज का उत्तराधिकारी होगा। जब उन्होंने उस प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये आग्रह किया तो आप क्यो उनके इस कार्य को लोभपरायण बतलाती हैं ? अरे विचारने की बात तो यह है कि राज्यकामुक होना हमारे लिये भी तो लोभ है।

थोडी देर में रामचन्द्र जी को पता लगा कि जिस समय महाराज दशरथ सज्ञाहीन पड़े थे उस समय लक्ष्मण ने क्रोध-

पूर्वक कहा था कि इस मोह निद्रा को छोड़ो और धनुष धारण करो। एक स्त्री ने हमारे न्यायानुमोदित राज्याधिकार से हमें वंचित किया है इसलिये हम आज पृथ्वी पर से स्त्री जाति का अस्तित्व ही नष्ट कर देंगे। इतनी ही देर में महाबाहु लक्ष्मण यहाँ आ पहुँचे और कहने लगे कि बन्धुवर! आप नहीं देखते कि हमारे ऊपर कैसा दारुण अत्याचार हुआ है। हम राज्य से वंचित किये, वृद्ध महाराज पृथ्वी पर पड़े हुए दारुण विलाप के द्वारा अपने अविचारपूर्ण कार्य कलाप का प्रायश्चित कर रहे हैं। इससे बढ़ कर कोई और भी क्रूरता हो सकती है। आपको इसका प्रतिकार करना चाहिये।

रामचन्द्र जी कहने लगे कि लक्ष्मण तुम्हें मेरा अधिकार च्युत होना इतना दुख देता है! अरे भाई चाहे मैं राजा हूँ चाहे भरत राजा हो, तुम्हारे लिये दोनों बराबर है। यदि तुम सच्चे धनुर्धर हो तो महाराज की आपदा के पक्ष काट करके उनकी रक्षा करो। सत्य रक्षा के लिये पिता का मेरे ऊपर अविचल विश्वास है। कनिष्ठा माता ने उन्हें प्रतिज्ञानुसार ही भरत को राज्य देने के लिये स्मरण कराया है। इसलिये निर्दोष जननी पर अस्त्राघात करना मैं किसी तरह उचित नहीं समझता। रहे भरत, उनका इस घटना से कोई सम्बन्ध ही नहीं प्रतीत होता, तो बतलाओ तुम्हारा दारुण क्रोध अब किस पर है?

लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि राज्य च्युत होने से हमें इतना

सीता यहाँ कैसे रह सकती थीं। कौशिल्या उनका शोकापनोदन करने के लिये कहने लगीं कि महाराज चौदह वर्ष कुछ अधिक नहीं होते, यदि आप जीवित रहेंगे तो सीता, राम, लक्ष्मण को आप पुन देख सकेंगे। महाराज ने अब सुमित्रा की सराहना करके कहा कि यह वीरप्रसू धन्य है, इसके पुत्र को रामचन्द्रजी की निरन्तर सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

महाराज दशरथ दारुण परिताप कर ही रहे थे कि उन्हें वालाकि के द्वारा इस बात का पता लगा कि सुमन्त शून्य रथ लेकर लौट आया है। यह सुनते ही दशरथ की आशा लता पर तुषार पात हुआ और उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो कृतान्त ने उस शून्य रथ को स्वयम् उन्हें लेने के लिये भेजा है। सुमन्त राजभवन मे आये। महाराज ने उनसे पूँछा कि रामचन्द्रजी क्यों नहीं आये और चलते समय उन लोगो ने मेरे लिये कुछ सन्देश कहा है या नहीं। सुमन्त ने उत्तर दिया कि शृङ्गवेरपुर में रथ से उतर कर गगा पार करते समय रामचन्द्रजी ने अयोध्या की ओर मुँह करके अत्यन्त आदर पूर्वक उसे प्रणाम किया और सन्देश भेजने के लिये भी तैयार हुये, परन्तु ज्यों ही उन्होंने मुँह खोला त्यों ही उनका गला भर आया और वे शोकावेग के कारण कुछ कह न सके। यह दारुण प्रसग सुनकर महाराज दशरथ की दशा और भी बिगड गई। परन्तु कौशिल्या के सुख स्पर्श से उन्हे चेतना हुई और वे कहने लगे

कि हाय ! मैं क्या सोच रहा था और क्या हुआ। विधाता की गति पर किसी का कुछ वश नहीं चलता। मैंने सोचा था कि रामचन्द्रजी को राज देकर मैं वन को जाऊँगा, परन्तु कैकेयी ने मेरे सारे सुख समूह एवं संकल्पों पर पानी फेर दिया ! अब मुझे मेरे पूर्वज बुला रहे हैं। मेरा अन्त आ गया इसलिये अब मैं जाता हूँ। यह कहकर महाराज ने एक दीर्घ निश्वास ली और वह सदा के लिये सो गये ! इधर अन्तःपुर में हाहाकार मच गया।

(३)

भरतजी इस समय अपने ननिहाल मे थे। उन्हें सूचित किया गया कि गुरुजी ने तुम्हे किसी आवश्यक कार्य के लिये बुलाया है। यह समाचार पाते ही भरतजी तुरन्त अयोध्या को चल पड़े। सारथी घोड़ो को वायुवेग से हाँके लिये आ रहा था। वह जानता था कि महाराज दशरथ अब इस असार संसार मे नहीं हैं परन्तु भरत के शोकावेग बढ़ जाने के भय से उनसे कुछ कहा नहीं। धीरे धीरे भरत अयोध्या के निकट आ गये इसी समय एक राज कर्मचारी अयोध्या की ओर से आया और उसने भरत से कहा कि आप एक घड़ी यहीं विश्राम करें क्योंकि इस समय कृत्तिका नक्षत्र है, जिसमे नगर प्रवेश वर्जित है। इसके उपरान्त रोहिणी लगते ही आप सानन्द नगर प्रवेश करें। भरतजी गुरुजनों की आज्ञा की अवहेलना करना जानते ही न थे अतः वह वहीं ठहर गये, और सन्देश वाहक को उन्होंने लौटा दिया।

भरत इस समय अपने विश्राम के लिये स्थान ढूँढ़ ही रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि एक वाटिका की ओर गई जिसके विशाल मन्दिरों के कलश आकाश से बातें कर रहे थे। उन्होंने सोचा कि चलो यहीं चल कर क्षणिक विश्राम कर लें और साथ ही साथ देव दर्शन भी करते चलें। इस विचार से वह मन्दिर में चले गये और पाषाण मूर्तियों को प्रणाम करने लगे। उन्हें सहसा मन्दिर के अन्दर आया हुआ देखकर पुजारी ने निषेध करते हुए कहा कि ये मूर्तियाँ क्षत्री नरेश्वरों की हैं अत: इनको प्रणाम न करो।

भरत ने पूछा कि ये मूर्तियाँ किन क्षत्री राजाओं की हैं। अब पुजारी ने उनका परिचय देना आरम्भ किया। उसने कहा कि यह भानुवंश विभूषण महाराज इक्ष्वाकु की मूर्ति है जिन्होंने देवासुर संग्राम में प्रमुख भाग लेकर दैत्यों का मानमर्दन किया था और अपने बाहु दण्ड के बल से समग्र वसुन्धरा पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराई थी। दूसरी के पास जाकर पुजारी ने कहा कि यह महाराज दिलीप की मूर्ति है जो विश्वजित यज्ञ में अपना सारा राज्यकोष दान में देकर मृतपात्र शेष विभूति से भी सन्तुष्ट रहे थे। इसके अनन्तर पुजारी ने क्रमश: रघु, अज और दशरथ की मूर्तियाँ दिखला कर उनका परिचय दिया। दिवगत नरेशों के साथ दशरथ की मूर्ति को देख कर भरत को बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उन्हें पुजारी से यह मालूम हुआ कि उनकी माता की क्रूरता के कारण पिता की मृत्यु हुई तब तो उनको बड़ा शोक हुआ और यह शोक उस

समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जब उन्हे सीता, राम, लक्ष्मण के वनवास का पता लगा। भरत इस दारुण समाचार को सुनकर मूर्छित हो गये।

अभी भरत को चेतना न आई थी कि सुमन्त विधवा महारानियों को लेकर दिवंगत महाराज की मूर्ति के दर्शन कराने को आये। देवियाँ अभी बाहर ही थी। सुमन्त ने आगे बढ़ कर देखा कि कोई युवापुरुष मूर्छित पड़ा है, इसलिये उन्होने रानियों को वहाँ आने का निषेध किया। इस पर पुजारी ने कहा कि यह कोई अन्य पुरुष नहीं है। यह राजकुमार भरत ही हैं। चिरपरिचित शब्द सुन कर भरत ने उन्हे पहिचान लिया परन्तु अपना सन्देह निवारण करने के लिये उन्होने पूछा, क्या आप कोशलाधीश के परममित्र सुमन्त हैं। उन्होने उत्तर दिया कि हाँ यही हतभागी सुमन्त है, जिसने अपने दीर्घ जीवन मे कोशलाधीश का मरण और रामचन्द्रजी का वनवास देखा है।

अब भरत ने क्रमशः तीनो माताओं को अभिवादन करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। कैकेयी को देख कर उनका क्रोध कृशानु प्रज्वलित हो उठा और वे कहने लगे कि तुमने मुझे अयश से, सीता, राम, लक्ष्मण को वल्कलो से, राजा को नाश से, अयोध्या को रोदन से, लक्ष्मण को वनवास से, सुत-वत्सला माताओं को शोक से, और सीता को अध्व खेद से, तथा अपने को धिक्कार पात्रता से मंडित करके एक से एक

चढ कर अनुचित कार्य किया। तुम पतिद्रोह करने के कारण माता होने के योग्य नहीं हो।

कैकेयी ने कहा कि प्रिय पुत्र मैंने इसलिये ऐसा किया था कि कहीं महाराज की वह प्रतिज्ञा असत्य न हो जावे जो उन्होने मेरे औरस पुत्र को राज्य देने के सम्बन्ध में की थी। भरत ने पूछा कि भला तुम्हारा हृदय काहे का है। तुमने जिस प्रति बन्धक पर रामचन्द्रजी को राज्यच्युत किया क्या उसमें कहीं इस बात का भी उल्लेख था कि वे वल्कल धारण करके पैदल ही पत्नी और बन्धु के साथ वन को जावें। तुमसे मैथिली का वल्कल धारण करना कैसे देखा गया। कैकेयी ने उत्तर दिया कि यह बातें शुलकानुशामिनी माता (प्रतिवन्ध पर विवाह करने वाली) के हृदय से पूछना चाहिये। इसके अतिरिक्त वशिष्ठ और सुमन्तादिक भी इसे जानते थे। यह कोई नितान्त गोपनीय रहस्य न था।

थोडी देर मे सुमन्त ने आकर प्रार्थना की कि राजनदन! वशिष्ठ वामदेव, पुर सर मंत्रिमण्डल आपसे राज्य भार ग्रहण करने के लिये अनुरोध कर रहा है। क्योकि जैसे गोपाल के बिना गोकुल की रक्षा नहीं होती, वैसे ही राजा के बिना प्रजा की रक्षा होना असम्भव है। भरत ने कहा कि गुरुजनों का अनु-रोध मुझे सर्वथा स्वीकार है। आप राज्य भार तो इन देवीजी के हवाले कर दीजिये। मुझसे इसके विषय में एक शब्द भी न कहिये मै तो रामचन्द्रजी के पास वन को जाऊँगा क्योंकि

अयोध्या वहीं है जहाँ उनका निवास है।

(४)

अयोध्या आते ही भरत राज्य और गृह का आवश्यक प्रबन्ध करके रामचन्द्रजी से मिलने के लिए वन को चल पड़े और चलते-चलते उनकी पर्णशाला के पास जा पहुँचे. वहीं पर उन्होंने अपना रथ रोक दिया और सुमन्त्र से कहला भेजा कि महाराज का दास भरत सेवा में उपस्थित हुआ है। भरत का शब्द रामचन्द्रजी के कर्णगोचर हुआ और उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि देखो यह कौन बोल रहा है, यह तो किसी आत्मीयजन का-सा शब्द मालूम होता है। लक्ष्मण आगे बढ़े और उन्होंने देखा कि सुमन्त के साथ कोई रामचन्द्रजी की समान आकृति वाला पुरुष आ रहा है। सुमन्त ने उन दोनों की भेंट कराई। लक्ष्मण ने भरत को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया इसके अनन्तर उन्होंने रामचन्द्रजी के पास जाकर भरत के आगमन की सूचना दी। रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण के साथ सीता को उनका स्वागत करने के लिए भेजा थोड़ी देर मे भरत ने आकर रामचन्द्रजी के चरणस्पर्श किया।

रामचन्द्रजी को वल्कल-वस्त्र धारण किये हुए देखकर भरत का दारुण शोक उमड़ आया और वे अबोध शिशु के समान रोने लगे। रामचन्द्रजी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि हे भाई! मैं पिता की आज्ञा से ही यहाँ आया हूँ किसी प्रकार अभिमान. भय अथवा मूढता से नहीं। हम सत्य प्रतिज्ञ रघुवंशी हैं इसलिए

मैं तुम्हे याद दिलाता हूँ कि तुम अपनी चित्तवृत्ति को कुमार्ग में न जाने दो। राज्याभिषेक आप ही का होना चाहिये क्योंकि माता ने आप ही के लिए महाराज से वचन ले लिया था और पिता ने भी इसका समर्थन किया था। इसीलिए उनकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण करना मानो उन्हे मिथ्यावादी बनाने का प्रयत्न करना है।

भरत ने कहा यदि ऐसा ही है तो चौदह वर्ष तक मैं आपके प्रतिनिधि के रूप से अयोध्या का राजसूत्र संचालन करूँगा, परन्तु इस अवधि के उपरान्त आप इस गुरुतर उत्तरदायित्व को अपने ऊपर ले ले। साथ ही साथ मैं यह भी चाहता हूँ कि आप मुझे अपनी चरणपादुका दे देवें, जिनके प्रसाद से मैं राज्य भार वाहन करने के समर्थ हो सकूँ। रामचन्द्रजी ने उनकी अभिलाषा पूर्ण की और उन्हे तत्काल अयोध्या को लौट जाने का परामर्श दिया।

(५)

भरत के चले जाने पर महाराज रामचन्द्रजी को खेद तो हुआ परन्तु थोडे दिनों के बाद यह जाता रहा और फिर पूर्ववत् दिनचर्या आरम्भ हुई। सीता आश्रम वृक्षों के आलवालो को अपने हाथ से जल लाकर सींचा करती थीं। एक दिन रामचन्द्र जी को सीता का परिश्रम देखकर बड़ा दुख हुआ और वे अपने मन में कहने लगे कि देखो यह वही मैथिली राजकन्या है जिसकी सेवा में सैकड़ों सहचरियाँ लगी रहती थीं। इसे दर्पण

देखने मे भी कष्ट होने लगता था परन्तु आज इसे जलपूर्ण कुम्भों को अपने हाथ से ले चलने में कष्ट नहीं होता।

मैथिली ने रामचन्द्रजी से पूछा आज आपका वदनारविन्द कैसे परिम्लान हो रहा है, क्या कोई विशेष बात है। रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया कि मेरे शोक-शल्य के विषय मे क्या पूछती हो! एक-दो दु:ख हो तो उनका वर्णन किया जाय। राम का जन्म मानो दु:ख झेलने के लिए ही हुआ है। देखो कल पिताजी का श्राद्ध दिवस है। समझ मे नहीं आता कि श्राद्ध कैसे करें। पितृगण समृद्ध पिण्डदान के अभिलाषी होते हैं। सीता ने निवेदन किया कि दिवंगत महाराज से हमारी दीनदशा कुछ छिपी हुई नहीं है। देशकाल के अनुसार श्राद्ध करना चाहिये। आप पत्र पुष्प से ही उनका श्राद्ध कर दीजिये समृद्ध श्राद्ध अयोध्या मे भरतजी कर लेंगे।

सीता और राम मे इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि वहाँ पर सन्यासी का वेष बनाये हुए रावण आ पहुँचा और अपने मन में कहने लगा कि यह खरदूषणादिक राक्षसो का निधन करने के कारण हमारा प्रत्यक्ष वैरी है, इसीलिए जैसे बन पड़े वैसे ही इसका अपकार करना चाहिये। इसके लिए सीता-हरण ही सबसे उपयुक्त प्रतिक्रिया है। इस प्रकार सोचते हुए रावण, रामचन्द्रजी की पर्णशाला मे आया। रामचन्द्रजी ने उसे अतिथि जानकर आसन दिया और मैथिली को उसके चरण धोने के लिए जल लाने की आज्ञा दी। सीताजी जल ले आईं।

ज्यों ही रामचन्द्रजी उसके चरण प्रान्छालन के लिए आगे बढ़े त्योंही रावण न कहा कि आपके मधुर वचनों से हमारा सत्कार होगया, अधिक कष्ट न कीजिये। मै छाया के अतिरिक्त शरीर का स्पर्श करना पसन्द नहीं करता। मैंने ऐसा ही व्रत धारण कर रक्खा है, सन्यासी तो मैं अब हुआ हूँ पहले मैं काश्यप गोत्री ब्राह्मण था। मैंने सांगोपाग, वेदाध्ययन किया है। मानवी धर्मशास्त्र, माहेश्वरी योगशास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र एव मेधातिथेय न्यायशास्त्र का सम्यक् प्रकार से अनुशीलन किया है और प्रचेता प्रणीत श्राद्धकल्पसे मैंने अद्वितीय पांडित्य प्राप्त किया है।

रामचन्द्रजी तो श्राद्ध करने ही वाले थे इसलिए उन्होंने छद्मवेषी सन्यासी से पूछा कि भगवन् बतलाइये पिण्डदान के समय पितरों के लिए किस वस्तु से तर्पण करना चाहिये, मुझे विशेष वस्तु बतलाइये। क्योंकि सामान्य वस्तुओं में पितरों का प्राय आदर कम रहता है। रावण ने उत्तर दिया कि राजकुमार! श्राद्ध का अर्थ यह है कि जो वस्तु श्रद्धा से दी जावे, परन्तु शास्त्रों ने विरूढ में दर्भाङ्कुर, औषधियों में तिल, वनस्पतियों में कलाय, मत्सयों मे महामद्त्र, विहंगमो में वार्ध्राणस एव चतुष्पदों मे धेनु और गेंडे की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त एक वस्तु और भी है परन्तु वह तेजपुज मनुष्यों को ही प्राप्त हो सकती है, सर्व साधारण को नहीं। और वह नगाधिराज पर उपलब्ध हो सकती है। उसके सर्वोच्च शिखर पर कांचन पार्श्व नामी मृग रहते हैं जो भगवान पिनाकपाणि शकर

के शिर से बहती हुई जाह्नवी का जलपान करते हैं। उनका पृष्ठ भाग वैदूर्य मणि के समान काला होता है और वे भागने मे वायु वेग की स्पर्धा करते हैं। तपस्विगण इन्हे ध्यानमात्र से बुलाकर अपने पूर्वजो की श्राद्ध क्रिया समपन्न करते हैं, परन्तु मनुष्य उन्हें देख भी नहीं सकते।

यह सुनकर रामचन्द्रजी ने मैथिली से कहा कि अब तो मै हिमालय के वनो मे ही निवास करूँगा जिनकी चोटियाँ जाज्वल्यमान औषधियों के कारण सदा प्रकाशित रहती हैं। अतः तुम उन प्रदेशो मे मेरे साथ चलने के लिए पुत्र तुल्य मृगो और विटप मालाओ से आज्ञा ले लो और अपनी प्रिय सखी लताओं से भी पूछ लो।

थोड़ी ही देर मे उधर से एक कांचनपार्श्व मृग आता हुआ दिखलाई पड़ा। रावण ने उसे रामचन्द्रजी को दिखलाकर कहा कि देखो मृग यहीं आ गया। हिमालय वहीं बैठे-बैठे आपकी सेवा कर रहा है आप वास्तव मे बड़े भाग्यशाली हैं। रामचन्द्र जी ने कहा कि महाराज यदि मै ऐसा ही भाग्यशाली होता तो राज्य छोड़कर इस प्रकार वनवासी न बनता। मेरे दुर्भाग्य के कारण और दो प्राणियो को कष्ट हो रहा है। हाँ, यह पूज्यपाद पिताजी का भाग्य अवश्य है कि घर बैठे ही श्राद्ध का यह वेद विहित साधन यहीं मिल गया। मैं इसे हस्तगत करने के लिए जा रहा हूँ और सीते ! तुम महाभाग अतिथि की विशेष सेवा करना, इसमे कोई त्रुटि न होने पावे। यह कहकर रामचन्द्रजी

तो हरिण को पकडने गये इधर लक्ष्मणजी तीर्थ यात्रा से लौटने वाले कुलपति का स्वागत करने के लिए दूर निकल गये। पर्णकुटी पर अकेला रावण रह गया और सीता उसकी सेवा मे सलग्न रही। उनको इस समय कुछ भय सा लग रहा था।

अनुकूल अवसर पाकर रावण ने अपना कार्य क्रम निश्चित किया और वह सीता से कहने लगा कि देखो, मैं रावण हूँ और तुम्हे हरण करने के लिये आया हूँ। आज मैं कर्त्तव्या-कर्त्तव्य विचार शून्य राम को धोखा देकर तुम्हारा हरण करूँगा। मैं वही रावण हूँ जिसने इन्द्रादिक देवताओं को युद्ध मे परास्त किया है और कुटिल काल की गति से सूर्पणखाँ की नाक काटा जाना और खरदूषणादिक के निधन का समाचार सुन चुका हूँ। अब तुम मेरे हाथ से जा नहीं सकतीं। मैंने इन्द्र, कुवेर, यम-राज और ब्रह्मादिको का भी मान मर्दन किया है। तुम राम को पुकारो चाहे लक्ष्मण को और चाहे दशरथ को, यह लोग मेरा उसी प्रकार कोई अनिष्ट नहीं कर सकते जैसे मृग शावक सिंह का अनिष्ट नहीं कर सकते। अब इस निर्जन कानन में तुम्हारा विलाप कलाप व्यर्थ है। अब तुम मुझे ही अपना पति मान लो क्योंकि रामचन्द्र मेरा कुछ बिगाड नहीं सकते।

रावण की ऐसी प्रगल्भ वचन रचना सुन कर पहले तो सीता कुछ सहम सी गई परन्तु तत्काल धैर्य धारण करके उसने रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को अपनी रक्षा के लिये पुकारा

और कहा कि अरे दुष्ट मै तुझे शाप देती हूँ। परन्तु शाप का कुछ भय न करके उसने सीता को पकड़ लिया और जनस्थान निवासी तपस्वियो और मुनियों को सम्बोधन करके वह बोला कि सुनो तुम लोग इस कार्य के साक्षी हो मैं वल-पूर्वक सीता का हरण किये हुए लिये जा रहा हूँ। यदि राम मे क्षत्री धर्म के अभिमान का लेश मात्र भी अवशेष रह गया है, तो वे अपनी प्यारी वनिता को मेरे पंजे से छुड़ावे।

इस प्रकार घोषणा करता हुआ रावण आगे बढ़ा थोडी दूर पर जाकर उसने देखा कि अपने पक्षो की पवन मे सारे वन को कंपाता हुआ जटायु उसके ऊपर आ रहा है। पहले तो इसे भ्रम हुआ कि यह कृतान्त है या स्वम् पक्षिराज हैं या मैनाक है, जो मेरा मार्गावरोध करने का दुस्साहस कर रहा है। परन्तु जब अधिक सानिध्य के कारण उसने वास्तविकता जान ली तब तो उसने कहा कि यह वृद्ध जटायु है और मेरे पाणितीर्थ में शरीर त्याग करने के लिये आया है। इसलिये अपनी चन्द्रहास के एक ही प्रहार से इसके पक्ष छेदन करके अभी इसे यमराज का अतिथि बनता हूं।

(६)

जब रावण सीता को लेकर और आगे बढ़ा तो जटायु ने उसे युद्ध के लिये ललकारा और कहा कि अरे दुष्ट! रघुसिंह की पत्नी को चुराये हुए कहाँ भागा जाता है। खड़ा रह अभी तेरा मान मर्दन करता हूँ। यह कह कर उसने अपने प्रखर नखो

और चञ्चु के आघातों से रावण का वज्र-तुल्य वक्षस्थल विदीर्ण करना आरम्भ कर दिया। रावण ने अपने चन्द्रहास के एक ही प्रहार से जटायु को धराशायी कर दिया और उसे पृथ्वी पर ऐसे गिरा दिया जैसे कदली वृक्ष को मदमत्त मतंग गिराता है। इस प्रकार जटायु को परास्त करके रावण सीता को लेकर लंका पहुँच गया और यहाँ लाकर उसने उन्हें अशोक वाटिका में रक्खा।

भरत ने सुमन्त को रामचन्द्र जी का कुशल वृत्तान्त लाने के लिये जनस्थान को भेजा था। वह वहाँ से सीता हरण का दारुण समाचार ले कर लौट आये और उनका दु ख न बढाने के अभिप्राय से बोले कि महाराज रामचन्द्र जी जनस्थान छोड कर किष्किन्धा को चले गये हैं, जहाँ बानरों की बस्ती है। सुना है कि वहाँ उन्होंने वालि को मार कर सुग्रीव को किष्किन्धा का राज दिलवाया है, जिस पर उसके ज्येष्ट भ्राता वालि ने दारुण अत्याचार कर रक्खा था और उसकी स्त्री तक को छीन लिया था। रामचन्द्र जी ने समदु ख होने के कारण उसके साथ सहानुभूति दिखलाई है।

समदु ख का शब्द सुनते ही भरत कुछ चौंक से पड़े और कहने लगे इसका क्या अभिप्राय है ? क्या सीता को कोई हरण कर ले गया। सुमन्त ने कहा कि नहीं महाराज मेरा अभिप्राय उनके राज्यच्युत होने से है। इस पर भरत ने उन्हें महाराज दशरथ की शपथ दिलवाई। तब तो वह यथार्थ बात कहने के

लिये विवश हुए। सीता हरण सुन कर भरत पहले तो संज्ञाहीन हो गये परन्तु फिर चेतना लाभ कर कहने लगे, अच्छा मेरे साथ अंतःपुर में कैकेयी के राजभवन को चलो। सुमन्त ने वैसा ही किया। भरत ने जाकर कैकेयी को सीताहरण का दारुण समाचार सुनाया और कहा कि अब तो तुम्हे सन्तोष हुआ? यह सुन कर पहले तो वह मर्माहत हुई परन्तु फिर धैर्य धर कर भरत से कहने लगी कि पुत्र अब मुझ से नहीं रहा जाता। तुम लोग व्यर्थ के लिये मुझे लांछित करते हो। मेरा इसमे कोई अपराध नहीं है। महाराज को इस बात का शाप था कि पुत्र वियोग मे ही उनके प्राण जायँगे। भरत ने पूछा कि महाराज को शाप कैसा? कैकेयी ने सुमन्त की ओर संकेत करके कहा कि यह महानुभाव इस रहस्य से भली भाँति परिचित हैं इन्हीं से पूछ लो।

भरत के प्रश्न करने पर सुमन्त ने कहना आरम्भ किया कि हे राजनन्दन! एक दिन महाराज मृगया के लिये वन को गये थे। वहाँ से लौटने पर बहुत विलम्ब हो गया। मार्ग भूल जाने के कारण वे सरयू के किनारे-किनारे आने लगे। इतने ही में रात्रि के समय कुछ हाथी का सा शब्द सुनाई दिया। यह शब्द वास्तव में उस कुम्भ का था जिसे एक तपस्वी कुमार अपने अन्ध माता-पिता को जल पिलाने के लिये सरयू मे भर रहा था। यद्यपि शास्त्रों ने गजवध का स्पष्ट निषेध कर रक्खा था और शास्त्रज्ञ होने के कारण महाराज को इस बात का पता भी था, परन्तु उन्हे

न जाने क्या सूझी कि उन्होंने अपना शरासन संधान कर शब्द-भेदी वाण चला दिया जिसके लगते ही वह कुमार वाणविद्ध होकर वहीं गिर पडा। उसके आक्रोश का शब्द सुन कर महाराज वहाँ गये और उसे वाणविद्ध देख कर उन्हें बडा दुख हुआ।

तपस्वी कुमार ने महाराज से कहा कि मेरे अन्धे माता पिता को जाकर जल पिला आओ और मेरे हृदय मे वाण निकाल लो। राजा ने ज्यों ही वाण खींचा त्यों ही उसके प्राण पखेरू उड गये। तपस्वी कुमार के कथनानुसार महाराज अंध दम्पत्ति के पास जलकुम्भ लेकर गये और उनके सामने रखकर चुपके से खड़े हो गये। वृद्ध ने पूछा कि पुत्र तुम बोलते क्यो नहीं? जब तक तुम न बोलोगे तब तक हम जल ग्रहण न करेंगे। यह सुन कर महाराज को अपने क्रूर कार्य की कथा कहनी पडी। अंध दम्पत्ति ने सुनते ही महाराज को शाप दिया कि वृद्धावस्था में पुत्र शोक से तुम्हे भी इसी का दृष्टांत प्राप्त होगा, और यह कह कर उन्होंने वहीं पर अपने प्राण छोड दिये यही महाराज के शाप की कथा है।

कैकेयी ने कहा कि अब तो तुम स्थिति से परिचित हुए। फिर उन्होंने पूछा कि अच्छा तुमने रामचन्द्र को १४ वर्ष के लिये वन क्यों भेजा? यदि तुम उनको वास्तव में अपने पुत्र ही के समान मानती थीं तो तुमने मुझे वन क्यों नहीं भेजा? कैकेयी ने उत्तर दिया कि ननिहाल में निवास के कारण तुम्हारा

प्रेम कुछ मन्द सा पड़ गया था। इसके अतिरिक्त मैं उन्हें केवल चौदह दिन के लिये वन भेजने वाली थी परन्तु उस समय हृदय की व्यग्रता और व्याकुलता के कारण मेरे मुख से चौदह वर्ष निकल गये और वही पाषाण की रेखा हो गई।

इस रहस्य को सुन कर माता के विरुद्ध भरत का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने उनसे अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी। सीता-हरण के प्रसंग का स्मरण करके भरत ने रामचन्द्र जी की सहायता करने के लिये एक प्रबल सेना भेजने का निश्चय किया, और कैकेयी से कहा कि मैं स्वयं लंका को जाता हूँ और अभी समुद्र पर सेतु बाँध कर उस दुर्दान्त राक्षस का दमन करके सीता को उसके पंजे से छुड़ा कर ही लौटूँगा। भरत और कैकेयी में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि उन्हें मालूम हुआ कि सुमन्त से सीता हरण का संवाद सुन कर कौशिल्या मूर्छित हो गई। भरत तुरन्त माता को धैर्य बँधाने के लिये अंतःपुर को चले गये।

(७)

लंकेश्वर का निधन करके भगवान रामचन्द्र लंका से लौट पड़े और मार्ग में जनस्थान में आकर ठहरे क्योंकि उन्हें कतिपय तपस्वियों का आतिथ्य सत्कार ग्रहण करना था। तपस्वी ने नन्दिलक से कहा कि रामचन्द्र के स्वागत और आतिथ्य के लिये सारा प्रबन्ध ठीक तो है? उसने उत्तर दिया कि हाँ सो तो सब ठीक है परन्तु विभीषण के साथ कुछ मांसाहारी राक्षस भी

आये हैं उनके भोजन का कोई प्रबन्ध नहीं किया जा सका। कुलपति ने कहा कि अब विभीषण के अनुयायी होने के कारण राक्षसों ने मांस खाना बन्द कर दिया है इसलिये इस सम्बन्ध में विशेष चिन्तत होने का कोई प्रसंग नही है।

भगवान रामचन्द्र जनकात्मजा को साथ लेकर पूर्व परिचित दण्डकारण्य में घूमने लगे। वहाँ जाते ही उन्हें चौदह वर्ष पूर्व की घटनायें नवीन सी मालूम होने लगी। थोडी ही देर में चारों ओर से पटह नाद सुनाई पड़ने लगा जिससे दिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं। रेणु आकाश तक छा गई सारे वृक्ष लोधवर्णी हो गये। इतने ही में लक्ष्मण ने वहाँ आकर रामचन्द्रजी को सूचना दी कि ससैन्य भरत आपसे मिलने के लिये आ रहे हैं और उनके साथ राजमातायें तथा प्रतिष्ठित पौरजानपद भी हैं। रामचन्द्रजी ने आगे बढ कर माताओं को अभिवादन किया। सीता ने श्वश्रूजनों को अभिवादन किया। इतने ही में शत्रुघ्न ने कहा कि गुरुजन एवं वशिष्ठ वाल्मीकि आदिक महर्षि वृन्द आपको यहीं अभिषिक्त करना चाहते हैं। भगवान रामचन्द्र ने कहा कि गुरुजनों की जैसी आज्ञा हो। गुरुओं ने रामचन्द्र का विधिवत राज्याभिषेक कर दिया जिससे विभीषण सुग्रीवादिक वानर पुंगवों एव आत्मीयजनों को बडा आनन्द हुआ।

'पंचरात्र'

(१)

द्वादश-वर्षीय-वनवासावधि समाप्त करके पाण्डवों ने गुप्त रूप से मत्स्य-राज विराट का आश्रय ग्रहण किया। दुर्योधन इस समय निश्चिन्त हो गया था कि अब पाण्डव जीवित न होंगे, क्योंकि उनके गुप्तचरों के अनवरत प्रयास करने पर भी उन लोगों का कहीं भी कोई पता न लगा था, इसलिये दुर्योधन ने निश्चिन्त होकर एक महा यज्ञ किया जिसमें सम्मिलित होने के लिये उसके आज्ञानुवर्ती सभी नरेश पधारे। उनके साथ सुभद्रानन्दन वीराग्रणी अभिमन्यु भी आये। इस यज्ञ के उपलक्ष मे दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को दक्षिणा देना चाहा इस पर उन्होंने गांगेय, कर्ण, शकुनी प्रभृति नरेशों के समक्ष वद्ध-प्रतिज्ञ दुर्योधन से यह दक्षिणा मॉगी कि जिन निराश्रित पाण्डवों का द्वादश वर्ष पर्यन्त कोई पता न लगा है उन्हे उनके राज्य का अर्द्ध भाग दिया जाय।

इस पर शकुनी ने कहा यह आचार्य की प्रवञ्चना है और वह भी धर्म के नाम पर। आचार्य ने कहा कि यदि तुमने माँगने से न दिया तो बलात्कार से तो दोगे ही। भीष्म ने दुर्योधन को समाधान करते हुए कहा कि यदि पांचालराज-कन्या के साथ पाण्डव वन में निराश्रित घूमते हैं और यह पारस्परिक विरोध इतना बढ गया है तो इसका सारा उत्तर दायित्व इस मृत्यु मुख शकुनी पर है। तुम आचार्य की याञ्चा पूर्ण करो। इस पर दुर्योधन ने कहा कि अच्छा जाइये मैंने पाण्डवों को आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की, परन्तु मामा से परामर्श कर लूँ। इसलिये उसने शकुनी से कहा कि कोई ऐसा उजाड़ भूखण्ड ढूँढ लो जहाँ की प्रजा कर न देती हो, वही पाण्डवों को दे दिया जाय। शकुनी ने उत्तर दिया कि जहाँ पार्थ राजा होंगे वहाँ पर प्रजा राज्य-कर क्यों न देगी और जहाँ राजा युधिष्ठिर राज्य करेंगे वहाँ ऊसर में भी अन्न पैदा होगा, परन्तु यदि आज से पाँच रात्रि के भीतर ही पाण्डवों का पता लग जायगा तो अवश्य उनका राज्य उन्हें दे दिया जायगा। भीष्म ने दुर्योधन की दया-दाक्षिण्य की सराहना करते हुए कहा पुत्र पाण्डव चाहे जब मिलें उनका राज्य उन्हें अवश्य देना चाहिये, क्योंकि कौरवों की प्रतिज्ञा कभी व्यर्थ नहीं होती। दुर्योधन ने कहा कि यही मेरा भी दृढ निश्चय है।

दुर्योधन और पितामह में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि विराट् नगर से एक दूत आया और उसने सूचित किया कि महाराज मत्स्य-राज आपके यज्ञ में इसलिये सम्मिलित न हो

सके कि उनके साले कीचक को सौ बन्धुओं के सहित किसी ने मार डाला और कीचक को तो रात्रि में ऐसे मारा कि उसका शरीर कहीं से भी व्रणाङ्कित नहीं होने पाया।

दूत के मुख से इस प्रकार कीचक निधन सुन कर पितामह घटना के रहस्य को ताड़ गये और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक आचार्य से कहा कि भाई पाँच रात्रि की अवधि स्वीकार कर लो, देखा जायगा। यद्यपि आचार्य इसे मानने को तैयार न होते थे और वार-वार यही कह रहे थे कि जिनका पता १२ वर्ष मे भी राज्य के वड़े-वड़े गुप्तचर भी न लगा सके उन्हे मै इतनी संकीर्ण अवधि में कैसे ढूढ़ सकूँगा, परन्तु भीष्म का संकेत पाकर उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त भीष्म ने दुर्योधन से कहा कि वत्स मेरा और विराट् का वड़ा पुराना विरोध चला आता है, इसके अतिरिक्त उन्होने तुम्हारे यज्ञ मे सम्मिलित न होकर वड़ी धृष्टता का परिचय दिया है, इसलिये उनका दर्प चूर्ण करना चाहिये। इस सम्वन्ध में मेरा विचार तो यह है कि विराटाधीश का गो-ग्रहण किया जाय। द्रोण इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होते थे इसलिये उन्होने कहा कि हे पिता-मह! विराटाधीश भी तो हमारे शिष्य हैं अतः उनका गो-ग्रहण करना व्यर्थ है; परन्तु भीष्म की आज्ञा से सारी सेना विराट नगर का अवरोध करने के लिये तैयार हो गई और थोड़ी देर के वाद वद्ध पंक्ति हो मत्स्य देश को चल पड़ी।

(२)

आज महाराज विराटेश्वर के मंगलग्रन्थि का दिवस था। इसके उपलक्ष मे यहाँ वडे आनन्द मनाये जा रहे थे। महाराज गोदान कर ही रहे थे कि वाहर से दूतों ने आकर सूचना दी कि महाराज! धृतराष्ट्र पुत्रों ने वरवश धेनुवृन्द का अपहरण किया है। इसलिये सुरभि-समूह पर घोर आपत्ति आई है। गोधाङ्गुलित्राण पहने हुए कवचावृत्त धनुर्धारियो का समूह अव राजा से अपना प्रत्यक्ष बदला न लेकर पशुओ पर वल प्रदर्शन कर रहा है। यह सुन कर राजा ने वडा परिताप प्रगट किया और कहा कि वड़े शोक की वात है कि मैं इस प्रकार उदरपूर्ति मे व्यस्त हूँ और उधर गोकुल पर घोर कष्ट है।

महाराज इसी विचार में निमग्न हो रहे थे कि सैनिकों ने आकर निवेदन किया कि महाराज! गायो के पण्डु वर्णी शरीर पर रथ रेणु पडने और उस पर कोड़े लगने से इस समय भिन्न-भिन्न वर्ण पंक्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। यह सुन कर राजा ने कहा कि मेरा धनुष ले आओ और रथ को अभी तैयार करो। मेरे साथ वे ही वीर चलें जो राजभक्ति से प्रेरित हों। यदि हम लोग युद्ध मे गायों के लिये मारे भी गये तो भी हमारा उद्योग सराहनीय होगा, और हम अक्षय पुण्य के अधिकारी होंगे।

दुर्योधन की और मेरी लडाई ही क्या थी। हाँ यह वात अवश्य है कि मैं उनके यज्ञ में सम्मिलित न हो सका, सो भी

केवल इसलिये कि कीचक के मार डाले जाने से हम लोग भी स्वयं शोक संतप्त हो रहे थे। हाँ एक बात अवश्य थी कि पाण्डवों के साथ हमारा प्रच्छन्न रूप से मेल अवश्य था; इसीलिये सम्भव है कि वह रुष्ट हो गया हो, परन्तु हस्तिनापुर निवासी भगवान से इसकी चित्तवृति के विषय में पूछ कर पता तो लगाना चाहिये, इसलिये उन्होंने छद्म भेषी युधिष्ठिर को बुलाया।

भगवान ने आकर यहाँ और ही दृश्य देखा। गज बाजि विरथ संग्राम के लिए तैयार किये जा रहे थे। कवचावृत महारथी बाण शरासन सन्धान किये हुए अपने रथो पर तैयार बैठे थे। यह देख कर भगवान ने विराट से प्रश्न किया कि आज किस पर चढ़ाई की जा रही है। विराट ने उत्तर दिया गोग्रहण करने वाले धृतराष्ट्र के विरुद्ध आज हमारा प्रयाण है। आज उनको अपनी धृष्टता का पता लग जायगा कि विराट नगर की धेनुओं का अपहरण करना कोई सामान्य कार्य नहीं है। चाहे युधिष्ठिर भले ही उन्हे क्षमा करदे परन्तु मैं क्षमा न करूँगा। यह सुन कर युधिष्टिर मन ही मन कहने लगे कि आज वास्तव मे मैं धन्य हूँ। आज मेरी पर्णशाला मे भूमि पर शय्या, राज्य-च्युति, पांचाली का केशम्बाराकर्पण, इत्यादि इत्यादि सब सफल हुए, यदि इन्हे मेरी धार्मिकता एवं क्षमाशीलता का पता लग गया।

इतने ही में युद्ध क्षेत्र से प्रतिपक्षी की सेना का समाचार लेकर अन्य गुप्तचर आये, और उन्होने मत्स्यराज को सूचना दी कि पृथ्वी पर के सारे कौरव-पक्ष-समर्थक राजाओं के अति-

रिक्त भीष्म, द्रौण, कर्ण, शल्य सिन्धुराज प्रभृति महारथी भी आये हैं। यह सुन कर छद्म वेशी युधिष्टिर को सन्देह होने लगा कि ये वयोवृद्ध कौरव पुरुषोत्तम किस लिये इस गोग्रहण ऐसे निंद्य कार्य में सम्मिलित होने आये हैं। वहुत सम्भव है कि ये मुझे प्रतिज्ञा पूर्ति का स्मरण दिलाने आये हों।

इसी समय विराटाधीश ने अपने सारथी को बुला कर स्यदन सज्जित करने का आदेश दिया, और भगवान से कहा कि बड़ा अच्छा हुआ जो वयोवृद्ध कौरव भी इस अवरोध मे सम्मिलित हैं। आज अपने तीव्र वाणो से इनकी रण-लालसा पूर्ण करूँगा। इतने ही मे सूत ने आकर कहा कि महाराज आपके चिर परिचित रथ पर सवार होकर आज राजकुमार उत्तर स्वयं युद्ध को गये हैं। इस पर विराट ने प्रश्न किया कि तुम कुमार के साथ क्यों नहीं गये। सारथी ने अत्यन्त विनीत भाव से निवेदन किया कि महाराज कुमार बृहन्नाला को अपना सारथी बना कर ले गये है। यह सुन कर भगवान को बड़ा सन्तोष हुआ, और उन्होंने विराट से कहा कि महाराज अब संत्रस्त होने का कोई अवकाश नहीं है। यदि अपने चक्रोधृतरेणुराशि से दुर्दिन करता हुआ बृहन्नला रथ पर बैठ गया है, तो फिर बिना वाण प्रहार के ही केवल चक्रनेमि के रव से शत्रुओं को परास्त करके आवेगा।

भगवान इस प्रकार विराट से कह ही रहे थे कि सग्राम भूमि से सैनिकों ने लौट कर कुमार के स्यंदन के मार्गावरोध का समाचार सुनाया। राजा बड़े आश्चर्य में आ गये। सैनिक

निवेदन करने लगे कि महाराज बहुत से गजाश्वपदाति समूहो के कारण रथ सीधा न जा सकता था। इसलिये वह श्मसान की ओर चला गया। भगवान श्मसान का नाम सुनते ही अपने मन मे समझ गये कि अरे गाण्डीव तो वहीं रक्खा है, और राजा से कहने लगे कि श्मसान में रथ के जाने का भी एक विशेष कारण है, और वह यह है कि जहाँ कौरव सेना खड़ी है वह स्थान श्मसान तुल्य हो जायगा।

विराट और भगवान मे इस प्रकार सम्वाद हो ही रहा था कि सैनिकों ने आकर उन्हे संग्राम भूमि का भीषण समाचार सुनाया और कहा राजकुमार उत्तर ने अपने प्रपर बाणो के प्रहार से नील वर्ण कुंजरघटा को अरुण वर्ण कर दिया है। कोई ऐसा घोड़ा और योधा नही है जिसके सैकड़ो बाण न लगे हो। इस समय सारी युद्ध-भूमि उत्तर कुमार के बाणो से व्याप्त हो रही है। द्रोणाचार्य ने ज्यानिर्घोष को सुन कर ही न जाने क्या समझा, अपनी ध्वजा मे बाण को देख कर भीष्म ने प्रहार नहीं किया, कर्ण भी बाण प्रहार के कारण स्तम्भित रह गये, और राजाओ की तो बात ही क्या; परन्तु एक बालक अभिमन्यु ही ऐसा है जो दारुण भय के उपस्थित होने पर भी किसी बात की चिन्ता नहीं करता है।

यह सुन कर विराट ने कहा कि उत्तर ने आज अवश्य ही लोकोत्तर पराक्रम प्रदर्शित किया है। परशुराम के बाण का निराकरण करने वाले भीष्म को तथा दिव्यास्त्र धारी द्रोण को एवं

कर्ण जयद्रथ प्रमुख अन्य राजाओं को परास्त करके क्या अपने बाणों से उसके पिता के पराक्रम से भयभीत होकर वह अभिमन्यु को न हरा सकेगा, परन्तु तुल्यवय होने के कारण वह उसकी रक्षा भी अवश्य करेगा।

उत्तर के पराक्रम को सुनकर विराटाधीश्वर बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे कि सैनिकों ने उन्हें गोगण के मुक्त होने का और कौरवों के भाग जाने का समाचार सुनाया। बृहन्नला भी तब तक लौट आया परन्तु उसे इसी बात का शोक रहा कि निःशेष राजवृन्द एवं पृथ्वी को जीत कर मैंने क्या किया यदि कृष्णा के केशाम्बराकर्षण कारी दुःशासन को संग्राम भूमि में बाँध कर यहाँ पर न लाया।

महाराज ने उसे देख कर संग्राम सादर भूमि का समाचार पूछना आरम्भ किया। इतने ही में उन्हें पता लगा कि अभिमन्यु भी राजसूद के द्वारा पकड़ लिया गया। भीमसेन ने उसे लाकर राजा के सामने उपस्थित किया और वह अपने मन में सोचने लगे कि लाक्षागृह में अग्नि लगाने के समय जब मैंने अपनी माता के सहित चारों भाइयों को इसी बाहु पर उठाया था तब मुझे इतना परिश्रम उठाना नहीं पड़ा था जितना कि बालक अभिमन्यु के उठाने में मुझे परिश्रम करना पड़ा है। भीमसेन ने पूछा कि कहो अभिमन्यु तुम्हारी माता तो अच्छी तरह से हैं। इसे सुनकर अभिमन्यु को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा कि तुम मुझे पकड़ लेने के कारण इस प्रकार मेरा अपमान कर रहे हो। इसके अतिरिक्त

तुम्हें प्रमदाजनो के सम्बन्ध मे इतनी धृष्टता पूर्वक प्रश्न करने का क्या अधिकार है?

बृहन्नला ने अभिमन्यु से कहा कि तुम अर्जुन के पुत्र और कृष्ण के भानजे हो, तुमने धनुर्विद्या का पर्याप्त अभ्यास भी किया है, तुम्हारी अवस्था भी तरुण है परन्तु इस युद्ध में तुम्हारे परास्त होने का क्या कारण है? अभिमन्यु ने कहा कि वृथा आत्मश्लाघा करने मे क्या रक्खा है। हम लोग इसे अच्छा नही समझते। योधाओ के शरीर पर लगे हुए वाणो मे केवल मेरा ही नाम दिखलाई पड़ेगा। राजा ने पूछा कि अभिमन्यु को किसने पकड़ा? भीम ने कहा कि महाराज इसे मैं पकड़ लाया हूँ। अभिमन्यु ने कहा कि पकड तो तुम अवश्य लाये हो परन्तु यह भी कह दो कि तुम उस समय निरस्त्र थे। भीम कहने लगे कि अरे बालक दुर्बल सैनिक धनुष-बाण धारण करते हैं। अक्षौहिणी सेना को विमर्दन करने वाली ये आंशु भुजाये ही मेरे आयुध है।

राजसभा मे इस प्रकार सम्वाद हो रहा था कि राजकुमार उत्तर सहसा वहाँ आ पहुँचे। उन्होने कहा कि लोग मेरी व्यर्थ ही प्रशंसा कर रहे हैं जिसे सुनकर मुझे लज्जा आती है। आप लोग उस पूजार्ह महानुभाव की वन्दना क्यों नही करते जिसने आज संग्राम भूमि में हमें विजय दिखाई है और वह पूजार्ह तुम्हारे निकट ही उपस्थित हैं। यह बृहन्नला ही धनञ्जय है इन्होने श्मसान भूमि से गाण्डीव और अक्षयतूणीर लेकर भीष्मादिक ही वीरों को रण-विमुख करके हमारी रक्षा की है।

बृहन्नला ने कहा कि महाराज बाल-बुद्धि से भ्रम में पड़ जाने के कारण यह अपने समग्र पराक्रम को भूलकर उसका समग्रश्रेय अर्जुन को दे रहा है। इस पर उत्तर ने कहा अच्छा इनका प्रकोष्ठ देख लिया जाय जिस पर गाण्डीव ज्याहतकिणाङ्क अब तक सवर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है। इस पर विराट ने कहा अच्छा इसकी परीक्षा की जाय।

फिर क्या था, अर्जुन को अपना रूप स्वीकार करना पड़ा और उन्होंने कहा कि यदि मैं रुद्रबाण-वृणांकित अर्जुन हूँ तो यह दीर्घकाय महानुभाव भीमसेन और यह महाराज युधिष्ठिर हैं। अर्जुन के कहने से सारा रहस्य उद्घाटित होगया और महाराज विराट को बडी प्रसन्नता हुई। उन्होंने गो-ग्रहण विजय के पुरस्कार मे उत्तराकुमारी को अर्जुन को देना चाहा, परन्तु उन्होंने कहा कि मैं इसे अपने पुत्र अभिमन्यु के लिए स्वीकार करता हूँ।

विराट ने शुभ मुहूर्त्त जानकर उसी समय उन दोनों का विवाह करना निश्चय किया। इसलिए युधिष्ठिर ने उत्तरकुमार के द्वारा यह शुभ समाचार पितामह इत्यादिकों के पास भेज दिया।

(३)

इधर अभिमन्यु के पकड़ जाने पर सारथी ने आकर सूचना दी कि नारायण के चक्रभय की चिन्ता न करके और पाण्डवों को चिरकाल से नष्ट जान कर धनुर्धारी कौरवों के रहते हुये भी

अभिमन्यु को कोई पकड़ ले गया। यह सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन और शकुनी आदिक वहाँ आ गये। भीष्म बोले कि अरे सूत भला अभिमन्यु कैसे पकड़ा गया। उसे संग्राम भूमि से पलायन की प्रक्रिया मालूम ही न थी, इसीलिये वह अपने बाल सुलभ औधत्य के कारण ही पकड़ा गया होगा। कर्ण कहने लगे कि अभिमन्यु कौरवो का पक्ष समर्थन करने मे हम लोगो के रहते हुये भी आज पकड़ लिया गया, इसलिये धनुप का परित्याग करके हमें वल्कल धारण करना चाहिये। दुर्योधन बोला कि भाई मेरा वैर तो पाण्डवो के साथ है न कि उस बालक से।

शकुनी कहने लगा आप लोग अभिमन्यु को अकेला क्यो समझते है। उसे अर्जुन का पुत्र जानकर विराट छोड़ देगे और यदि ऐसा नही तो दामोदर का स्मरण करके, अथवा प्रलम्ब प्रमाथी हलधारी का स्मरण करके, और भयभीत होकर विराट राज तो उसे किसी भी प्रकार नहीं रख सकते और यदि इस पर भी उन्होने न छोड़ा तो भीम तो उसे शत्रुओ को परास्त करके ले ही आवेगा। द्रोण कहने लगे कि क्या उसका रथ टूट गया या पहिये पृथ्वी मे फँस गये या घोड़े ही बिगड़ गये या उसके निपंग मे शायक ही नहीं रह गये या उसके धनुप का ज्याबन्ध ही टूट गया था; क्योकि ऐसी ही दुरावस्था प्राप्त होने पर महा-रथी पकड़े जाते हैं।

सूत ने उत्तर दिया कि महाराज! ऐसी कोई दुरावस्था नहीं हुई। उसे एक पदाति वीर ने अपने हाथों से पकड़ लिया।

उसने आते ही आते हमारे घोड़ो को रोक दिया जिससे हमारा रथ स्तम्भित रह गया और उसने अभिमन्यु को निमिप मात्र में उतार लिया।

अभिमन्यु पदाति के द्वारा उतारे जाने का समाचार सुनकर भीष्म को वडा सन्तोष हुआ क्योंकि वे इस वात को समझ गये कि अभिमन्यु को भीम ही पकड ले गया होगा, इससे पहले भी एक वार पांचाली के हरण के अनन्तर स्यन्दनारूढ होकर भगते हुए जयद्रथ को भी उन्होंने पैदल ही पकड लिया था। इसके अतिरिक्त हम लोग तो सग्राम भूमि में आयुध धारण करके जाते हैं परन्तु रिक्तहस्त जाने वाले दो ही वीर हैं (वृकोदर, वलराम)। द्रौणाचार्य ने भीष्म की उक्ति का समर्थन करते हुए कहा कि वह अवश्य भीम ही होगा। शस्त्र विद्या के अभ्यास काल मे आकर्पणकृष्टशरासन से चलाये हुये वाण को वह लक्ष्य तक पहुँचने से पहले ही मार्ग मे पकड लेता था। इसके अतिरिक्त क्या तुम लोगों ने संग्राम भूमि मे वज्र निर्घोप के समान गर्जन करते हुए धनुष का रव नहीं सुना ? क्या यह चापकर्षण उत्तर का था और क्या उत्तर ही ने मुहूर्त्त मात्र के लिए अपने वाणान्धकार मे दिवाकर को छिपा दिया था ?

इतने ही में सूत वाहर से एक वाण लेकर आया। गागेय ने शकुनी से कहा—पुत्र पढ़ो तो इसमें किसका नाम लिखा हुआ है। जराजीर्ण होने के कारण मेरी दृष्टि काम नहीं देती। शकुनी ने उसे पढ़कर कहा कि इसमें अर्जुन को नाम तो अवश्य लिखा

हुआ है परन्तु बहुत सम्भव है कि इस नाम का कोई दूसरा वीर भी हो। इस पर दुर्योधन ने कहा कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए उन्हें आधा राज तो अवश्य दूँगा परन्तु यदि युधिष्ठिर का पाँच रात्रियों के भीतर ही पता लगे।

इसी समय राजकुमार उत्तर वहाँ पर आ पहुँचे और पितामहादिक कौरव वृद्धों का अभिवादन करके उन्होने कहा कि मेरे आने में विलम्ब इसलिये हुआ कि अर्जुन ने अपने बाणों से मत्त मातंगो और चंचल तुरंगों को मार कर मार्ग मे ढेर कर दिया था जिसके कारण आने मे बडी बाधा पड़ी। इस समय युधिष्ठिर ने आपके पास मुझे भेजा है और कहलाया है कि उत्तरा और अभिमन्यु के विवाह मे आप लोग अखिल राज मण्डली के साथ सम्मिलित हो और पूछा है कि यह विवाह कहाँ किया जाय। यह सुनकर द्रोण ने कहा अब तो पाण्डवों का पता पंच रात्रि के भीतर ही लग गया. इसलिये उनका राज्य दे दिया जाय। दुर्योधन ने कहा देता हूँ, यह लीजिये।

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण

(१)

प्राचीन काल में वत्सराज बड़ा ही शोभा सम्पन्न राज्य था। था। कौशाम्बी उसकी राजधानी थी। चन्द्र वंशावतंस महाराज सहस्रानीक बहुत दिनों तक यहाँ का शासन-सूत्र संचालन करने के अनन्तर वार्धक्य का अनुभव करके ईश्वर आराधना के लिये वन को चले गये और राज्य भार अपने सुयोग्य पुत्र शतानीक को दे गये। वह भी अपने पिता के समान ही धैर्य्यधुरीण एवं प्रताप शाली राजा था। उसके पुत्र का नाम महाराज उदयन था। इन्होंने थोड़े ही दिनो में अपने अनुपम गुणो से अखिल प्रजावर्ग के हृदयो पर अपना अधिकार कर लिया था। सांगीत विद्या मे इन्हे बड़ी रुचि थी और वीणा-वादन में इन्होने अपूर्व पटुता प्राप्त की थी।

उज्जैनी के महाराज प्रद्योत भला इनका प्रचण्ड प्रताप कब सहन कर सकते थे। इसलिये उन्होने इन्हें अपना वशवर्ती

वनाना चाहा, परन्तु आयुधधारी उदयन के समक्ष सग्राम में कोई भी शक्ति नहीं ठहर सकती थी । अन्त मे उन्होंने कूटनीति का आश्रय लेकर इन्हें पकडना चाहा, परन्तु यौगन्धरायण ऐसे नीति-निपुण मन्त्री के रहते हुए यह और भी दुस्तर कार्य था। अत. उन्होंने इस कार्य के लिये अपने परम विश्वासपात्र मन्त्री शालङ्कायन को नियुक्त किया । यह भी कैतव नीति में वडा ही दक्ष था। इसे यह भी मालूम था कि संग्राम भूमि में स्वय यम-राज भी वत्सराज को प्रचारणा देकर परास्त नहीं कर सकते। इसलिये इसने एक चाल चली।

उज्जैनी के सीमा प्रान्त पर नागवन था। इसमें इसने एक कृत्रिम वारण बनवाया जिसके दो बड़े-बड़े चमकीले दाँत दूर ही से दृष्टिगोचर होते थे। नाग वन मे बहुत से सालवृक्ष थे, जिनकी नीले रग की सघन छाया मे मतंगज का भ्रम हो जाना कोई अस्वाभाविक वात न थी। महाराज उदयन को वारण वन्धन का दुर्व्यसन था। उन्होने गज वशीकरण विद्या भी सीखी थी, जिसके द्वारा वह केवल वीणा वजा कर मदमत्त मातग को मुहूर्त मात्र मे अपने वश मे कर सकते थे । एक दिन महाराज उदयन मृगयार्थ वेणुवन मे गये। धर्म शास्त्रों में वारण वध का निषेध किया गया है, परन्तु महाराज उदयन को न जाने आज क्या सूझी कि वे अचानक इस कार्य के लिये भी सन्नद्ध हो गये। नर्मदा को पार करके थोड़े से लोगों को साथ लेकर राजचिह्न धारण किये हुए वे वारणाखेट के लिये चल पड़े। आगे चल कर

मद्रगन्धी पर्वत के निकट नदी के दूसरी ओर चिकनी मिट्टी के बने हुए हाथियो का समूह दृष्टिगोचर हुआ । इसके भय से शंकित होकर सेना को आगे बढ़ने का साहस न हुआ । इतने ही में एक अपरिचित सैनिक ने महाराज से आकर निवेदन किया कि वहाँ से कुछ ही दूरी पर मल्लिकासालाच्छन्नवन में नख-दन्त विहीन एक नीलवरणी वारण रहता है। यदि आप चाहे तो उसे पकड़ सकते हैं।

उदयन को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होने गज लक्षण में पढ़ रक्खा था कि इन्दीवर वर्णी मातंग चक्रवर्त्ती लक्षण सम्पन्न होता है । इसलिये उन्होने इस सैनिक को शत-हेमखंड पुरस्कार देकर लौटा दिया और अपने सैनिको से कहा कि तुम यही ठहरो मैं इस हाथी को अभी वीणा वजाकर फँसाये लाता हूँ। मन्त्रिवर रुमण्वान राजा के साथ थे। उन्होने प्रार्थना की कि महाराज आपको यह शोभा नहीं देता कि आप ऐरा-वणादि दिग्गजो को पकड़ने के लिये जायँ, क्योकि इससे अनिष्ट की सम्भावना है, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यही निकटवर्ती प्रदेश में अनार्य शत्रु भी रहते हैं। ऐसी दशा में मुझे यह ज्ञात होता है कि आप अपने वारणादिको को तो पदातियों की संरक्षता मे भले ही यहाँ छोड़ दे परन्तु हम लोगो को अपने साथ ले चलें, क्योंकि आपका अकेला जाना मुझे श्रेयस्कर प्रतीत नहीं होता।

रुमण्वान के प्रबल आग्रह को जब महाराज किसी प्रकार न

टाल सके तो उन्होंने अपनी शपथ दिलाकर उससे कहा कि तुम लोग थोडी देर तक यहीं ठहरो मैं अभी आता हूँ। रुमण्वान अब कुछ न कर सका। महाराज अपने नीलवलाहक नामी हाथी से नीचे उतर आये और पाटलाख्य अश्व पर सवार होकर केवल वीस सैनिकों के साथ नागवन मे आगे वढ़े। वारण श्रेष्ठ को पकडने की लालसा से महाराज उदयन वायुवेग से आगे चले जा रहे थे। निर्दिष्टस्थान जव १०० धनुप दूरी पर रह गया, तो सालवृक्षों की सघन छाया में आगे कुछ दिखलाई न पडा, केवल दो लम्बे-लम्बे दाँतों के समान कुछ दृष्टिगोचर होता था। लोगो ने अनुमान कर लिया कि यही हाथी है।

महाराज उदयन अपने पाटलाख्य अश्व से नीचे उतर आये और वीणा को हाथ में लेकर आगे वढे। महाराज के आगे वढ़ते ही भीषण सिंहनाद कर्णगोचर हुआ। वीरगण ज्यों ही उसका कारण जानने के लिये आगे वढे त्यों ही उस कृत्रिम करीन्द्र के उदर से सैनिक समूह निकल पडा, और उन लोगों को घेर कर खडा हो गया। अपने को वैरिवृन्द के द्वारा चारों ओर से आवृत देखकर महाराज उदयन ने सैनिको का उत्साह वढाते हुए कहा कि यह सारी धूर्तता प्रद्योत की है। मैं अपने प्रचण्ड दोर्दंड के वल से अभी इनका निराकरण करता हूँ, तुम लोग हताश न होना। यह कह कर महाराज अपने पाटलाख्य अश्व पर सवार हो गये और शत्रुओं से डटकर लोहा लेने लगे। वैरिवृन्द के वल को महाराज ने अकेले ही इस प्रकार मथ डाला

जैसे अम्भोजिनी वन को गजराज नष्ट कर देता है।

असंख्य शत्रु सेना के बीच में केवल बीस वीर क्या कर सकते थे, क्रमशः महाराज उदयन के सैनिक परिश्रान्त होकर पृथ्वी पर सदा के लिये सोने लगे और विजय लक्ष्मी शत्रुओं के हाथ लगी। समग्र दिवस भीषण संग्राम करने के अनन्तर महाराज भी शत्रुओं के आयुधों से आहत होकर पृथ्वी पर मूर्छित होकर गिर पड़े। उनके गिरते ही शत्रु सेना मे आनन्द छा गया। शत्रुओं ने लताप्रतानो के बन्धनो से उन्हे दृढ़तापूर्वक जकड दिया और बन्दी बना लिया। विधि विडम्बना वश नागेन्द्र शुण्ड के समान पीनस्कन्ध वाली कङ्कण वलित भुजाओं मे हथ-कड़ियॉ डाल दी गई।

थोड़ी ही देर में वत्सराज की मूर्छा विगत हुई। तब तो अन्य सैनिक इनका विराध वध करने के लिये सन्नद्ध हुए, क्योंकि अभी-अभी इन्होंने उनके बन्धु-बान्धवो को अपने निष्कृप कृपाण के घाट उतार कर यमराज का अतिथि बनाया था। उनमे से एक कृपाण-पाणि सैनिक महाराज को कचार्पण करके उनके शीर्षो-च्छेदन के लिये तैयार हुआ, परन्तु रक्तरजित संग्राम भूमि मे उसका पॉव फिसल गया और करस्थ करवाल पर गिरकर वह सदा के लिये वहीं पर सो गया। इतने ही में प्रद्योत के अमात्य शालङ्कायन को कुछ चेतना आई, जो महाराज उदयन के कुन्तल प्रहार से मूर्छित हो गया था। उदयन का वध करने पर तुले हुए सैनिको को निवारण करते हुए उसने कहा कि देखो ऐसा निन्दनीय

कार्य कदापि न करना । वीरों को ऐसे क्रूर कार्य कलाप कदापि शोभा नहीं देते। निरस्त्र वीर पर अस्त्राघात करना घोर नीचता है। अमात्य प्रवर के ऐसे वचन सुन कर सैनिक ज्यो के त्यों खडे रह गये और वह स्वयं अस्त्राघात से शिथिल होते हुए भी महाराज को एक शिविका में डाल कर उज्जैनी को ले चले।

जब महाराज उदयन आखेट के लिये नागवन मे गये थे तो वह वत्सदेश के राज्य सूत्र सचालन का सारा भार अमात्य प्रवर यौगन्धरायण को सौप गये थे। जब उनके जाने के अनन्तर कई दिनों तक कोई कुशल समाचार न आया तो उन्हें बडी व्यग्रता हुई। और वे सारक नामी भृत्य को महाराज का कुशल-वृत्त लाने के लिये वेणुवन भेजने ही वाले थे कि उन्हें रक्षासूत्र का स्मरण आया और उन्होंने विजया दासी के द्वारा राजमाता से कहला भेजा कि सौभाग्यवती स्त्रियों से छुआ कर उसे भेज दो, क्योंकि महाराज के पास दूत जा रहा है वह रक्षासूत्र भी लेता जायगा।

विजया को अवरोध गृह में गये अभी देर भी न हुई थी कि हसक नामी एक सैनिक महाराज के पास से आया और उसने उनके बन्दी हो जाने का समाचार महामात्य को सुनाया। यह सुन कर वह अत्यन्त मर्माहत हुए और महाराज के बन्धन मोक्ष का उपाय सोचने लगे। इतने ही में प्रतिहारी रक्षासूत्र लेकर आई और मत्री से कहने लगी इसे अब आप महाराज के पास भेज दीजिये। यौगन्धरायण ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा कि

अब इसे किसके पास भेजें, महाराज को प्रद्योत का मंत्री बाँध ले गया है, परन्तु तुम इस दारुण समाचार को सहसा राजमाता से न कह बैठना अन्यथा उनके सुमन सुकुमार हृदय पर बड़ी चोट लगेगी, परन्तु इसका छिपाना भी उचित नहीं है। पहले तुम युद्ध के दोषोद्घाटन करना फिर उनके मन में शंका उत्पन्न करके तब कहीं वास्तविक शोक गाथा कहना। विजया सतर्कता के साथ राजमाता को यह शोक समाचार सुनाने के लिये अन्तःपुर चली गई।

यौगन्धरायण ने हंसक से पूछा कि तुम लोग स्वामी को दारुण विपन्नावस्था में छोड़ कर कैसे चले आये। उसने अत्यन्त विनीत भाव से निवेदन किया कि स्वयं महाराज ने मुझे आपके पास आने की आज्ञा दी थी। तभी तो मैं यहाँ आने के लिये विवश हुआ अन्यथा मैं भी संग्राम भूमि में अपने प्राण देता, पर यह संदेश लेकर यहाँ कदापि न आता। इतने ही में राजमाता ने प्रतिहारी के द्वारा यौगन्धरायण से कहला भेजा कि आपके महाराज बन्दी बना लिये गये हैं उनकी मुक्ति साधन का उपाय करना नितान्त आवश्यक है। आप मंत्रियों के साथ मिल कर परामर्श कीजिये, और जैसे बने वैसे उन्हें छुड़ा लाइये। महाराज का आपके ऊपर भ्रातृ स्नेह था अमात्य स्नेह नहीं था इसलिये उन्हें छुड़ाना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। महाराणी की बात सुन कर यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की कि मैं शत्रु सेना से घिरे हुए महाराज को, राहु ग्रस्त चन्द्रमा के समान छुड़ा लाऊँगा। यदि

ऐसा न करूँ तो मेरा नाम नहीं।

एक दिन राजा की ग्रह-उपद्रव-शान्ति के लिये एक वृहत ब्रह्म भोज दिया गया। उनमे एक विक्षिप्त से ब्राह्मण ने अन्य भोजन भट्टों से कहा कि इन उत्तम पदार्थों का भोग लगाओ, क्योंकि निकट भविष्य में राजवंश का अभ्युत्थान होने वाला है। यह कह कर वह अन्तर्द्धान हो गया और अपने वस्त्र वहीं छोड़ गया। यौगन्धरायण बडा ही कुशाग्रबुद्धि था। उसने तुरन्त जान लिया कि यह भगवान वेदव्यास होगे, और उन्होंने मुझे इसी व्याज से विक्षिप्त के रूप में महाराज के पास जाने का संकेत किया है। इसलिये वह राजमाता की वन्दना करके महाराज उदयन के पास उज्जैयिनी को चल पडा।

(२)

राजकन्या वासवदत्ता अब विवाह वयस्का हो चुकी थी। उसके रूप लावण्य एवम् दयादाक्षिण्यादि लोकोत्तर गुणो की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई थी। इसलिये उसके पाणिग्रहण की अभिलाषा से देश-देश के राजेन्द्र वर्ग वहाँ आये दिन आते ही रहते थे। इनमे मगधादीश, अगाधिपति, सौराष्ट्रपाल, मिथिलेश, सूरसेननाथ एवम् काशिराज थे। एक दिन वाराणसीनाथ ने अपने उपाध्याय जैवन्ति के द्वारा महाराज प्रद्योत के पास यह प्रस्ताव लिख कर भेजा कि वासवदत्ता का विवाह उनके साथ करा दिया जावे। राजा ने आगन्तुक का बडा सत्कार किया, परन्तु वह उस प्रस्ताव के विषय में कुछ न कह सके।

अन्तःपुर में राजा, कंचुकी और महाराणी के पास बैठे हुए वासवदत्ता के विवाह सम्बन्धी वार्तालाप कर रहे थे। कंचुकी कह रहा था कि महाराज इस समय प्रायः सभी प्रमुख राजाओं के दूत आपकी सेवा मे आ चुके हैं, परन्तु आपने अभी तक वासवदत्ता के वाग्दान के विषय मे कोई निश्चय नहीं किया। राजा ने कहा कि स्नेहाधिक्य के कारण मैं वासवदत्ता के अनुरूप वर की खोज मे हूँ। मैं चाहता हूँ कि जामाता मे सभी अलौकिक गुणो का समन्वय हो। परन्तु केवल मेरे चाहने से क्या हो सकता है। कन्या पर माता का ही अधिकार होता है इसलिये महारानी की सम्मत्ति के अनुसार ही बातचीत करना चाहिये।

राजा ने महाराणी से पूछा कि आज तुम्हारी वासवदत्ता कहाँ है, बहुत देर से दिखलाई नहीं पडी। देवी ने उत्तर दिया कि महाराज वह कुछ दिन से अपनी सखी कंचनमाला को वीणा-वादन का अभ्यास करते देख कर गांधर्व विद्या मे अनुरागवती हो गई है, इसलिये वह वैतालिकी उत्तरा के निकटवर्त्ती गांधर्व-शाला मे नारदीय वीणा सीखने गई है। उसके लिये शीघ्र ही आप किसी सांगीताचार्य को नियुक्त कर दे जिससे वह सांगीत-विद्या मे भी पारांगता हो जाय। राजा ने कहा कि हम उसके लिये ऐसा वर ढूंढ रहे हैं जो उसे सांगीत विद्या एवम् वीणा-वादन मे निपुण कर दे।

इतने ही मे प्रतिहारी ने महाराज को सूचना दी कि अमात्य प्रवर शालङ्कायन जी वत्सराज को बन्दी बनाये हुए लिये आ

रहे हैं। पहले तो महाराज प्रद्योत को इस पर विश्वास ही नहीं होता था परन्तु जब बार-बार प्रश्न करने पर दूत ने वही उत्तर दिया तब तो उनके आश्चर्य का पारावार न रहा, और उन्होंने अपने मन में कहा कि वत्सराज का प्रधानामात्य महामात्य यौगन्धरायण अवश्य पकड लिया गया होगा क्योंकि जब तक उसके शरीर तन्तुओं मे रक्त प्रवाहित होता रहता तब तक वत्सराज का पकडा जाना केवल दुरूह ही नहीं किन्तु असम्भव भी था। इतने ही मे दूसरे चर ने आकर समाचार दिया कि महाराज वत्सराज बन्दी बना कर लाये जा रहे है।

यह सुन कर प्रद्योत को बडा आनन्द और सन्तोष हुआ। उसने कहा कि आज मेरी अक्षौहणी सेना अपने चर्म वर्मादिको का परित्याग करके निश्चिन्तता पूर्वक विश्राम करे, मैं भी अपनी धनुष प्रत्यञ्चा उतारे डालता हूँ, आज हमारे आश्रित वे राजा भी निशङ्क हो जायें जो वत्सराज के डरके मारे हमें गुप्त रूप से राज्य कर दे जाया करते थे। वास्तव में मेरे नाम की सार्थकता आज ही प्रमाणित हुई। इसके अनन्तर उन्होने अपने मंत्री भर्तरोहक को आज्ञा दी कि वत्सराज का उचित सत्कार किया जाय और उनकी प्रतिष्ठा में कोई त्रुटि न होने पावे।

रानी ने देखा कि आज महाराज प्रद्योत अपने घोर शत्रु को वश में करके भी उसके प्रति इतना श्रेष्ठ वर्ताव कर रहे हैं। पहले तो उन्हें महाराज की अस्वभाविक उदारता पर बडा आश्चर्य हुआ, परन्तु उनकी महानुभावता पर विचार करके

अन्त मे उन्होंने कहा कि अवश्य ही वत्सराज बड़ा ही अपूर्व एवंम् आदरास्पद वीर है। न तो उन्होंने महाराज के पास विवाह इच्छा से अपना कोई दूत ही भेजा और न कोई ऐसा प्रस्ताव ही किया। सम्भव है कि वह निरा बालक हो, या महाराज की दिगंतव्यापनी कीर्ति अथवा प्रचण्ड प्रज्वलित प्रताप पुञ्ज से परिचित न हो। राजा ने कहा वह मेरे महासेन नाम को ही तुच्छ समझता है। राजर्षि पुरुरवा के लोक विश्रुत वंश मे उत्पन्न होने के कारण तथा प्रजाजनो के हृदयों पर अपना अधिकार स्थापित करने के कारण इसमे राजोचित दर्प की मात्रा भी बहुत अधिक है। सांगीत विद्या का तो यह मर्मज्ञाचार्य है।

इतने ही मे कंचुकी ने महाराज महासेन को एक वीणा लाकर दी और कहा कि यह वत्सराज कुल की प्रतिष्ठा है। विजयोपहार में केवल यही एक वस्तु प्राप्त हुई है। राजा ने कहा बड़ा अच्छा हुआ। यही तो घोषवती वीणा है इसको हम अवश्य अपने पास रक्खेंगे। परन्तु हम इसे दे तो किसे दे। ज्येष्ठ राजकुमार अर्थ शास्त्र के अध्ययन मे लगे रहते हैं और कनिष्ठ कुमार शारीरिक व्यायाम मे, अत: इन दोनों मे से किसी को भी ललित कलाओ से प्रेम नहीं है। इसलिये यह वीणा वासवदत्ता को दे दी जावे जिसके हृदय क्षेत्र में सांगीतानुराग का अभिनवांकुर प्ररोहित होने लगा है।

इसी समय महाराज को समाचार मिला कि शृङ्खलाबद्ध वत्सराज शालङ्कायन के घर पर मयूरपृष्ठ सुख मन्दिर में पड़े हैं।

यह सुन कर महाराज ने पूछा कि क्या अद्यावधि उनके व्रण विरोपणादिका का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, यदि नहीं तो अभी क्रिया कुशल शल्य चिकित्सकों को बुला कर उनका औषधोपचार कराया जाय और सूर्यातप से बचाने के लिये उन्हे मणिभूमि प्रदेश में स्थान दिया जाय। मत्री ने वैसा ही किया।

(३)

अमात्य यौगन्धरायण राजमाता से राजा के छुडाने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। इसलिये वेदव्यास वितीर्ण वस्त्र पहन कर और उन्मत्त का सा वेष बनाकर उज्जैयिनी को चल दिये। उनके साथ वत्सराज का मन्त्री रुमण्वान भी श्रमणक का वेष बनाकर चल दिया। वसन्तक भी साथ हो लिया। इस प्रकार यह त्रकुटी वत्सराज को बन्धन मुक्त कराने के लिए उज्जैयिनी को चल पड़ी। वहाँ उन्हें भाग्य-वश अग्निग्रह में प्रवेश भी प्राप्त होगया। वसन्तक गुप्त रूप से महाराज उदयन को देख भी आया और उसने आकर यौगन्धरायण से कहा कि महाराज आज चतुर्दशी का स्नान एवम् पूजन कर चुके हैं। यौगन्धरायण ने उसके द्वारा महाराज से यह कहला भेजा कि कल ही आपको कारागार से छुटकारा दिलाने का प्रबन्ध कर रक्खा गया है। हम दोनों ने गुप्त रूप से प्रद्योत के परमप्रिय नीलागिरि हाथी की गजशाला में ऐसी-ऐसी औषधियाँ पहुँचा दी हैं जिससे उसका उन्माद तुरन्त बढ जायगा। साथ ही साथ उन्मादोदीपन उपकरणों का भी प्रबन्ध कर रक्खा है। जब वह उत्पात मचाना आरम्भ करेगा तो महासेन अवश्य आपसे

उसके उत्पात शान्त के लिए कहेंगे क्योंकि उन्हे इस बात का पता लग गया है कि आप गजवशीकरण विद्या जानते है। उस समय आप उसी नीलगिरि पर सवार होकर विन्ध्याचल को पार करके अपने राज्य को चले जाना।

वसन्तक ने कहा यह तो ठीक है परन्तु इसमे विघ्न की भी सम्भावना है। क्योंकि अभी गत दिवस ही वासवदत्ता अपनी धात्री के साथ शिविका मे बैठकर भगवती यक्षिणी के मन्दिर मे पूजन करने गई थी। संयोगवश वत्सराज उस दिन कारागाराध्यक्ष को उत्कोच देकर बाहर टहल रहे थे। इसलिये उन्होने राजकन्या को भली-भॉति देखा और मुझसे कहा कि महासेन ने जो मेरा अपमान किया है उसके बदले मे उसके साथ वैसा ही करना चाहिये और कुछ दक्षिणा भी लेनी चाहिये।

यौगन्धरायण ने कहा देखो इन्हे भी क्या सूझी है। शत्रु के कारागार मे है और उसी का ऐसा अपमान करने पर तुले हैं देखा जायगा, इनके साथ वासवदत्ता को भी ले चलने का उद्योग करेंगे। यह कह कर वह अपने कार्य मे प्रयत्नशील हुआ। रुमण्वान और यौगन्धरायण ने मिल कर परामर्श किया, कि जैसे हो वैसे इस बार महासेन को अवश्य नीचा दिखलाया जावे। इसलिये कूट नीति का आश्रय लेकर महाराज को बन्धन मुक्त करावे और वासवदत्ताहरण भी करें।

यौगन्धरायण ने गुप्त रीति से ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा था कि वत्सराज के विश्वास्म पात्र सेवक प्रद्योत के यहॉ नौकर हो

गये थे। इन लोगों ने भी अपने को ऐसा छिपाया था, कि किसी को कानों कान भी इनका पता न लगने पाता था। इनमें से एक गात्र सेवक के नाम से महाराज प्रद्योत के यहाँ हाथीवान के काम पर नियुक्त हो गया था, इसने एक दिन वारुणी सेवन का वहाना किया। भाग्यवश उस दिन राज कन्या वासवदत्ता जल क्रीडा के लिये जाने वाली थी। इसीलिये उसने अपने भद्रवती नामनी कारिणी को सुसज्जित करने की आज्ञा दी। गात्रसेवक आवश्यकता से अधिक वारुणी सेवन के कारण उन्मत्त होने का वहाना कर ही चुका था, कारिणी को कौन सुसज्जित करता। इतने में महाराज उदयन अवसर पाकर वासवदत्ता को लेकर भाग गये।

फिर क्या था चारों ओर हाहाकार मच गया। कौशाम्बी के गुप्तचरों ने अपने आयुध उठा लिये और डट कर युद्ध होने लगा। अकेले यौगन्धरायण ने प्रद्योत की एक चौहणी का आक्रमण व्यर्थ किया परन्तु अन्त में विजय सुन्दर गज के दन्त पर प्रहार करने के कारण उनका खड्ग टूट गया और वह वन्दी वना लिया गया। सैनिकों ने उससे कहा कि उदयन पकड लिये गये परन्तु वह महाराज की गजसंचालन पटुता से भली भाँति परिचित था, इसलिये उसे विश्वास न आया।

महासेन के अमात्य भर्तरोहक ने यौगन्धरायण से भेंट की। दोनों मत्रियों में वहुत देर तक बात चीत होती रही यौगन्धरायण ने कृत्रिम गज वाले छद्म की ओर संकेत किया और कहा कि

हमने आपके पदांकों का अनुसरण किया है। भर्तरोहक ने कहा कि उदयन ने राजकन्या को शिष्या के रूप में ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की थी। परन्तु उसका अपहरण करके उन्होंने घोर विश्वास घात किया। हमारे महाराज ने उन्हें वन्दी बना कर भी उनका राजोचित सत्कार किया, परन्तु उन्होंने अच्छा नहीं किया। यौगन्धरायण ने उत्तर दिया कि प्राचीन परम्परा के अनुसार यह सर्वथा न्याय संगत है। अर्जुन ने भी सुभद्राहरण किया था। शक्तिशाली नरेश्वर अपने वाहुवल से राजकन्याओं को जीत कर इसी प्रकार गंधर्व विवाह करते ही रहते हैं, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है।

महासेन ने वासवदत्ता और उदयन के चित्र पट को रख कर आवश्यक वैवाहिक कार्य सम्पन्न करा दिया।
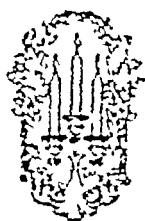
गये थे। इन लोगों ने भी अपने को ऐसा छिपाया था, कि किसी को कानों कान भी इनका पता न लगने पाता था। इनमें से एक गात्र सेवक के नाम से महाराज प्रद्योत के यहाँ हाथीवान के काम पर नियुक्त हो गया था, इसने एक दिन वारुणी सेवन का बहाना किया। भाग्यवश उस दिन राज कन्या वासवदत्ता जल क्रीड़ा के लिये जाने वाली थी। इसीलिये उसने अपने भद्रवती नामनी कारिणी को सुसज्जित करने की आज्ञा दी। गात्रसेवक आवश्यकता से अधिक वारुणी सेवन के कारण उन्मत्त होने का बहाना कर ही चुका था, कारिणी को कौन सुसज्जित करता। इतने में महाराज उदयन अवसर पाकर वासवदत्ता को लेकर भाग गये।

फिर क्या था चारों ओर हाहाकार मच गया। कौशाम्बी के गुप्तचरों ने अपने आयुध उठा लिये और डट कर युद्ध होने लगा। अकेले यौगन्धरायण ने प्रद्योत की एक अक्षौहणी का आक्रमण व्यर्थ किया परन्तु अन्त में विजय सुन्दर गज के दन्त पर प्रहार करने के कारण उनका खड्ग टूट गया और वह बन्दी बना लिया गया। सैनिकों ने उससे कहा कि उदयन पकड़ लिये गये परन्तु वह महाराज की गजसंचालन पटुता से भली भाँति परिचित था, इसलिये उसे विश्वास न आया।

महासेन के अमात्य भर्तरोहक ने यौगन्धरायण से भेंट की। दोनों मन्त्रियो में बहुत देर तक बात चीत होती रही यौगन्धरायण ने कृत्रिम गज वाले छद्म की ओर संकेत किया और कहा कि

'दूतवाक्य'

वनवासावधि समाप्त करके पाण्डवों ने विराट नगर में अपने को प्रकट किया। मत्स्यराज ने सारा वृत्तान्त जान कर अपनी दुहिता उत्तराकुमारी का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दिया। इस उत्सव मे सम्मिलित होने के लिये पांचाल राज, श्रीकृष्णचन्द्र एवं पाण्डवों के अन्य पक्ष समर्थक राजा लोग भी आये थे। विवाहोत्सव सानन्द समाप्त हो गया।

एक दिन समस्त राज-मण्डली ने मिलकर निश्चय किया कि दुर्योधन के पास राजदूत भेजकर पाण्डवों को उनका न्यायानुमोदित राज्य भाग दिलाने का प्रस्ताव किया जाय। यह दुर्धर्ष दूतकार्य भगवान कृष्णचन्द्र जी को सौंपा गया, और वे सभा की आज्ञा को शिर पर रख कर पाण्डवों का हित करने के लिए हस्तिनापुर को चल दिये।

दुर्योधन पाण्डवों का राज्य हड़प करने पर तुला बैठा था। इसलिये उसने भी एक सभा की जिसमें भीष्म, द्रोण, करण,

'दूतवाक्य'

वनवासावधि समाप्त करके पाण्डवों ने विराट नगर में अपने को प्रकट किया। मत्स्यराज ने सारा वृत्तान्त जान कर अपनी दुहिता उत्तराकुमारी का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दिया। इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये पांचाल राज, श्रीकृष्णचन्द्र एवं पाण्डवों के अन्य पक्ष समर्थक राजा लोग भी आये थे। विवाहोत्सव सानन्द समाप्त हो गया।

एक दिन समस्त राज-मण्डली ने मिलकर निश्चय किया कि दुर्योधन के पास राजदूत भेजकर पाण्डवों को उनका न्यायानुमोदित राज्य भाग दिलाने का प्रस्ताव किया जाय। यह दुर्धर्ष दूतकार्य भगवान कृष्णचन्द्र जी को सौंपा गया, और वे सभा की आज्ञा को शिर पर रख कर पाण्डवों का हित करने के लिए हस्तिनापुर को चल दिये।

दुर्योधन पाण्डवों का राज्य हड़प करने पर तुला बैठा था। इसलिये उसने भी एक सभा की जिसमें भीष्म, द्रोण, करण,

शकुनी, सिन्धुराज प्रभृति वीर पुरुष सम्मिलित हुए। दुर्योधन ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि एकादश अक्षौहिणी सेना का अधिनायक कौन बनाया जाय। इस पर शकुनी ने कहा कि महाबाहु गांगेय के रहते हुए और कौन सेनापति होने की क्षमता रखता है। शकुनी का प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किया गया और भीष्म पितामह को सेनापति के पद पर अभिषेक किया गया।

अभी सभा बैठी ही थी कि कंचुकी ने आकर सूचना दी कि पाण्डव स्कन्धावार से भगवान पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी राजदूत बन कर आये है। कंचुकी के मुख से भगवान श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम कहते हुए सुन कर दुर्योधन का क्रोध कृशानु भडक उठा और उसने डाट कर कहा कि राजा के निकट रहने वाले भृत्यो का ऐसा प्रमाद ! उसे कौन पुरुषोत्तम कहता है। वह तो कस का दास था। जरासिन्ध के भय के मारे वह इधर उधर मारा मारा फिरता था, और तो क्या उसकी माता ही ने उसे बॉध रक्खा था, वह पुरुषोत्तम कैसे हो सकता है। दुर्योधन की उग्रता देख कर कंचुकी समझ गया कि वास्तव में कृष्ण के उत्कर्ष का उल्लेख करके मैंने भारी राजनैतिक भूल की। इसलिये उसने कहा कि नहीं महाराज मेरी भूल थी। क्षमा कीजिये कृष्ण दूत बन कर आया है, यह सुन कर दुर्योधन को सन्तोष हुआ।

थोडी देर में उसने यह घोषणा की कि उनका अभिवादन करने को कोई सभासद कदापि न उठे, जो कोई उठेगा उसे बारह भार सुवर्ण दण्ड देना पड़ेगा। स्वयं न उठने के लिये भी उसने एक

बहाना सोचा, इसलिये उसने वह चित्रपट मँगाया जिसमे कृष्णा का केशाम्बराकर्पण किया गया था और उसे बद्ध दृष्टि होकर देखने लगा। फिर उसने कर्ण ने कहा कि मित्र देखो यह कृष्णमति कृष्ण पाण्डवो का सन्देश लेकर हमारे पास आया है, इसलिये तुम युधिष्ठिर के नारी मृदुल शब्दो के सुनने के लिये तैयार हो जाओ। यह कह कर उसने कंचुकी को आज्ञा दी कि कृष्ण को बुला लाओ।

भगवान कृष्ण के राजसभा मे प्रवेश करते ही सभासद् गड़बड़ मे पड गये। कुछ लोग तो अपने आसन से गिर पड़े, इनमे दुर्योधन भी था। कुशल प्रश्न के अनन्तर भगवान ने पाण्डवो की ओर से प्रस्ताव किया कि निर्धारित अवधि के समाप्त होने पर अब उनका राज्य उन्हें सौंप दिया जाना चाहिये। दुर्योधन ने कहा कि उनका राज्य कैसा, राज्य का अधिकारी तो मैं हूँ। इससे पहले मेरे चचा पाण्डु राजा थे। उनके देवलोक जाने पर राज्य मुझे मिला, क्योकि उनके कोई औरस पुत्र न था। ये पाण्डव राजवंशी नहीं हैं। ये तो देवताओं के पुत्र हैं। इसलिये इनका अधिकार राज्य पर नहीं हो सकता। चाचा जी तो मुनिशापवस दार-विरक्त रहते थे, फिर उनकी सन्तान कहाँ से आई। भगवान कृष्ण ने कहा कि तुम तो अपनी वंश परम्परा भली भाँति जानते हो, इसलिये मैं तुम से पूछता हूँ, तुम्हारे पिता महाराज धृतराष्ट्र क्या भरत वंश की सन्तान हैं? वह भी तो विचित्रवीर्य के मरण के उपरान्त व्यास

से उत्पन्न हुए थे। यदि धर्मराज का राज्य पर केवल इन्हीलिये अधिकार नहीं पहुँचता कि वह भरतवश की विभूति नहीं हैं तो इसी नियम के अनुसार तुम्हारे पिता को भी कोई राज्याधिकार नहीं है। ऐसी दशा में तुम उस राज्य के अधिकारी कहाँ तक हो यह विचारने की बात है।

दुर्योधन! तुम्हें इस बात को भली भाँति जान लेना चाहिये कि बन्धु बान्धवों के साथ वचकता करना घोर मूर्खता है। अभी तो वे पाँच गाँव मात्र की याचना से सन्तुष्ट है, परन्तु यदि तुमने इसे पूर्ण न किया तो निश्चय ही पाण्डव अपने निष्कृप कृपाण की धार के बल से अपना सारा राज्य ले लेंगे। इससे बढ कर तुम्हारी भूल यह है कि तुम समग्र सभा के सामने अपने बन्धुओं के अपमान का चित्र देख रहे हो। इससे बढ कर लज्जा का प्रसग और क्या हो सकता है। संसार का कोई विचार शील पुरुप ऐसा निघृ'ण व्यवहार अपनी आँखों से देखने के लिये कदापि तैयार न होगा। तुमको यह दुर्मति छोड कर बन्धुओं से स्नेह करना चाहिये, अन्यथा इस पारस्परिक वश-विरोध मे सारा कुरु कुल नष्ट हो जायगा। दुर्योधन ने उत्तर दिया कि देवात्मजों के साथ मनुष्य पुत्रों की मित्रता कदापि नहीं हो सकती। इसलिये इस प्रसग को यहीं समाप्त करो।

भगवान कृष्ण ने देखा कि दुर्योधन किसी तरह से ठिकाने पर नहीं आता। तव तो उन्होंने निश्चय किया कि परुषाक्षर वाक्यों से इसकी क्रोधाग्नि भडका कर इसे सक्षुब्ध करना

चाहिये। इसलिये उन्होंने कहा कि दुर्योधन! कदाचित तुम्हे धनंजय के पराक्रम का पता नहीं है इसीलिये इस प्रकार बड़ी बड़ी बाते करते हो। इन्द्र कील गिरि पर तपस्या करते हुए किरीटी ने अपने विषम बाणो की वर्षा से कपट किरात रूप धारी पिनाकपाणि भगवान शंकर को सन्तुष्ट किया था। इन्द्र के विषम वर्षा करने पर भी उन्होने बाणमण्डल बॉध कर खांडव दाह के समय अग्नि को प्रसंन्न किया था और द्रोण, कर्ण आदिक वीरो के रहते हुए भी जिन्होने अकेले ही विराट नगर के अवरोध मे समग्र कौरवी सेना को परास्त किया था। काम्यक वन वाली घटनाओ का तो तुम्हे स्मरण होगा ही, जब चित्ररथ तुम्हे पकड़े लिये जा रहा था, तब तुम्हे अर्जुन ने ही छुडाया था।

अपने अपमान की कथा सुन कर दुर्योधन को बडा क्रोध आया, और उसने राजाओं को आज्ञा दी कि कृष्ण को अभी बॉध लो, परन्तु भगवान ने विराट रूप धारण कर लिया जिससे अखिल राज चक्र का प्रयास व्यर्थ हुआ। भगवान के भृकुटी भंग करते ही चक्र, पांचजन्य, कौमोदकी, सारंग और पक्षिराज इत्यादि सब वही घटनास्थल पर आकर उपस्थित हो गये थे, परन्तु उनके शान्त होने पर सब के सब अपने-अपने स्थान को चले गये। अन्त में ज्योंही भगवान जाने को तैयार हुए त्योंही महाराज धृतराष्ट्र ने आकर उनसे अपने पुत्रों के अपराध के लिये क्षमा मॉगी। उन्हे सन्तुष्ट करके भगवान कृष्ण पाण्डव-शिविर में चले आये।

~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~

मध्यम व्यायोग

पाण्डवो के राजसूय यज्ञ मे उनके सुरेन्द्र ऐश्वर्य को देख कर तथा द्रौपदी, भीम और कृष्ण के परिहास से क्रुद्ध कर दुर्योधन ने उनका का सर्वनाश करना निश्चय किया परन्तु बाहुबल से इस विचार को कार्य रूप मे परिणित करना असम्भव था; इसलिये शकुनी और कर्ण की कूट मंत्रणा से एक विराट द्यूत सभा का आयोजन किया गया, क्योंकि युधिष्ठिर की द्यूत-प्रियता प्रसिद्ध थी, और क्षत्रिय वंशावतंश होने के कारण वह जुआ और युद्ध मे पीछे पैर हटाना धर्म विरुद्ध समझते थे। दुर्योधन का द्यूत निमंत्रण पाकर पाण्डव कालारात्रि को जुवा खेलने गये, और शकुनी के कपट से अपना सर्वस्व गँवा कर वनवासी हुए।

ये लोग काम्यक वन में रहते थे। इसी समय काल प्रेरित केशवदास नाम का एक ब्राह्मण अपने तीन पुत्रो और पत्नी के सहित उसी वन मे होकर निकला। वह अपने सम्बन्धी के घर किसी संस्कार विशेष में सम्मिलित होने के लिये जा रहा था।

यद्यपि इस यात्रा से पहिले भगवान जलक्लिन्न मुनि ने उन्हे सचेत कर दिया था कि वह वन मार्ग बडे बड़े राक्षसों से उपद्रवित होने के कारण अत्यन्त भयानक है, तथापि कार्य की आवश्यकता के कारण ब्राह्मण परिवार को उसी मे होकर चलना पडा।

ये लोग अभी आधी दूर भी न आये थे कि हिडम्बा राक्षसी का पुत्र घटोत्कच इनके पीछे लगा, जिसे देख कर सारा ब्राह्मण परिवार सत्रस्त हो गया। अब घटोत्कच उनके और भी निकट आ गया था। उसने उन्हे घबराते हुए देख कर कहा कि हे ब्राह्मण ! इस प्रकार भयभीत मत हो। मैं इतना क्रूर नहीं हूँ कि तुम्हारे सारे परिवार को मृत्यु का ग्रास बनाऊँ। परन्तु इतना अवश्य है, कि मैं तुममें से एक को निश्चय ही अपनी शोणित-पारणा माता की तृषा निवृति के लिये ले जाऊँगा क्योंकि उन्होंने मुझे ऐसी आज्ञा दे रक्खी है, और मैं माता के अनुशासन की अवहेलना करने को इस क्रूर कार्य से बढ कर पाप समझता हूँ, इसलिये तुम अपने तीनों पुत्रों में से किसी एक को देकर बेखटके अपना मार्ग लो, क्योंकि सर्वनाश समुत्पन्न होने पर पडित अर्ध भाग को छोड देता है और अर्द्ध-विशेष से ही अपना काम निकालता है।

घटोत्कच की वचन-रचना यद्यपि विचार पूर्ण थी, परन्तु पुत्र के माता-पिता ऐसे क्रूर प्रस्ताव से कदापि सहमत न हो सकते थे। सहसा उनके हृदय में यह विचार उदय हुआ, कि इसी वन में कहीं पाण्डव भी रहते होंगे। वे तो अशरण-शरण हैं,

और दुर्वृत्तो का दलन करना उनका प्रधान कर्तव्य है, इसलिये भयभीत होने की आवश्यकता नही, परन्तु जब उसे अपने ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि पाण्डव लोग भीमसेन को पर्णशाला के परिरक्षणार्थ वहीं छोड़ कर महर्षि धौम्य के आश्रम को शतकुम्भ यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिये गये हैं तब तो उनका भय फिर पूर्ववत हो गया, परन्तु इस परिस्थित मे निस्तार का कोई उपाय दिखाई न पड़ता था, इसलिये ब्राह्मण ने अपने पुत्रों से परामर्श करके घटोत्कच से अपने निस्तार का उपाय पूछा। उसने उत्तर दिया. कि एक मात्र यही उपाय है कि तुम अपने तीनो पुत्रो मे से किसी एक को मेरी माता का भोजन बनने के लिये भेज दो, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही। यह सुनकर पहिले तो ब्राह्मण बहुत सन्तप्त हुआ, परन्तु अन्त में कुटुम्ब की रक्षा के लिए अपना प्राणोत्सर्ग करने को तैयार हो गया।

अपने वृद्ध पति को इस प्रकार मृत्यु के मुख मे यात्रा करने के लिये सन्निद्ध देख कर पातिव्रत धर्म की मर्यादा को ध्यान मे रख कर ब्राह्मणी अपना प्राण परित्याग करने को तैयार हुई। उसे देख कर उसके ज्येष्ठ और कनिष्ट पुत्र भी स्वर्ग यात्रा के लिये प्रस्तुत हुए, परन्तु घटोत्कच ने ब्राह्मण की वृद्धता और ब्राह्मणी के स्त्रीत्व के कारण उन्हे ले जाना स्वीकार न किया, क्योंकि इन दोनों का भोजन उसकी माता की रुचि के प्रतिकूल था। इधर ज्येष्ट पुत्र को स्नेहाधिक्य के कारण पिता ने और कनिष्ट

को माता ने न आने दिया, इसलिये उनके मध्यम पुत्र ने ही मरना निश्चय किया और वह माता-पिता तथा अपने ज्येष्ठ भाई को प्रणाम करके घटोत्कच के साथ चलने को तैयार हुआ, परन्तु चलने से पहिले उसने निकटवर्ती सरोवर में अपनी पिपासा निवारण करनी चाही और इसलिये घटोत्कच से आज्ञा लेकर वह पानी पीने चला गया।

जब उसे कुछ विलम्ब हुआ तो घटोत्कच ने वृद्ध ब्राह्मण से पूछा कि तुम्हारा पुत्र कहाँ चला गया है उसे अभी पुकारो। मेरी माता की भोजन बेला व्यतीत हुई जाती है, या मुझे उसका नाम ही बतला दो. मैं स्वय बुला लूँगा। ब्राह्मण तो कुछ न बोला परन्तु भयभीत होने के कारण छोटे लडके के मुँह से यह बात निकल गई कि उसका नाम मध्यम है। फिर क्या था घटोत्कच ने उसका नाम लेकर पुकारना आरम्भ किया।

सौभाग्यवश इसी समय मध्यम पाण्डव भीमसेन वहाँ पर व्यायाम कर रहे थे। उन्होंने जाना कि कोई मुझे बुला रहा है। इसलिये व्यायाम को बिना समाप्त किये ही वह उस ओर चल पड़े, और बोले कि मैं आ रहा हूँ। पल-मात्र में भीमसेन घटोत्कच के सामने आकर खड़े हो गये।

भीम को अपने सामने आया देख कर घटोत्कच उनकी विशाल कायता से मन ही मन सक्षुब्ध हो रहा था कि उधर से उसका बलि-पशु ब्राह्मण कुमार मध्यम भी वहीं आ गया। उसे देख कर घटोत्कच ने कहा आओ चले। इस पर वृद्ध ने भीम-

सेन से ब्राह्मण वंश के परित्राण के लिये प्रार्थना की, और उन्होंने उसे अभय दान देकर उनका परिचय पूछा। ब्राह्मण ने अपनी करुण कथा कह कर घटोत्कच की निशृंसता का वर्णन किया। इस पर भीम को क्रोध आ गया, और वह ब्राह्मण के मार्ग मे बाधा पहुँचाने के अपराध पर घटोत्कच को दण्ड देने के लिये तैयार होकर बोले कि इसको छोड दो। घटोत्कच ने इस पर बिगड़ कर कहा कि यदि मेरे पूज्य पाद पिताजी भी इतनी प्रगल्भता पूर्वक मुझे माता की आज्ञा पालन से विरत करना चाहे तो वे भी ऐसा नहीं कर सकते।

घटोत्कच की धृष्टता पर भीमसेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि यह तो किसी अत्यन्त पराक्रमशाली पिता का पुत्र है, और बड़ा मातृभक्त भी है। इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने उसकी माता का परिचय पूछा। घटोत्कच ने उत्तर दिया कि मेरी माता कौरव-कुल-कुमुद-कलाधर महाबाहु भीमसेन की जाया है। यह सुन कर उन्हे बड़ा सन्तोष हुआ, और उन्होंने ब्राह्मण से कहा तुम अपने पुत्र को ले जाओ, मैं इसके स्थान पर जाने को तैयार हूँ, परन्तु यदि इस राक्षस-कुमार में शक्ति है, तो यह अपने बाहु-बल का परिचय देकर मुझे बरबश ले चले।

यह सुनकर घटोत्कच को क्रोध आ गया और उसने कहा सावधान हो जाओ, मैं तुम्हे अपने बाहु-बल ही से ले चलूँगा। यह कह कर उसने भीम के विशाल वक्षस्थल को अपनी बाहु

अर्गल से जकड लिया। परन्तु भीमसेन ने अनायास ही पल-मात्र मे उसका वाहु-वधन तोड कर कहा कि अच्छा अव और पराक्रम दिखाओ।

घटोत्कच को भग्नप्रयास होने पर वडा खेद हुआ परन्तु तत्काल ही उस मातृ प्रदत्त माया पाश का स्मरण आया और उसमें वाँध कर भीमसेन को ले जाने के लिये उसने मत्र जपा। भीमसेन तुरन्त माया पाश मे वँध गये। परन्तु उन्हे भी ऐसे पाश से मुक्त होने का एक शकर प्रदत्त मत्र याद था। इसलिये ब्राह्मणकुमार के कमण्डलु मे जल लेकर आचमन करके उन्होने उस मत्र का जाप किया और वह वधन मुक्त हो गये।

घटोत्कच भीमसेन को साथ लेकर चल पडा। और अपनी माता से जाकर कहने लगा कि देखिये आपके लिये भोजन लाया हूँ। जब हिडम्वा ने वाहर आकर भीमसेन को देखा तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा, और उसने अपने पुत्र से कहा, कि यही महानुभाव मध्यम पाण्डव तुम्हारे पिता हैं।

अव क्या था विनयावनत घटोत्कच ने अपने अज्ञात अपराध के लिये क्षमा माँगी। भीमसेन ने कहा पहिले इस ब्राह्मण परिवार से अपने अपराध के लिये क्षमा माँगो। घटोत्कच ने वैसा ही किया, और ब्राह्मण परिवार ने उन्हें भूरि भूरि आशीर्वाद देकर अपने निर्दिष्ट मार्ग की ओर पदार्पण किया। इधर भीम हिडम्वा और घटोत्कच भी आनन्द पूर्वक एक साथ रहने लगे।

ऊरुभंग

अट्ठारह दिन के लोमहर्षण संग्राम के अनन्तर महाभारत का अन्त हुआ। महाभारत मे भाग लेने वाले वीरो मे केवल नौ मनुष्यों को छोड़ कर अष्टादस अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ। सहसा एक दिन तीन सैनिक कुरुक्षेत्र का भयानक दृश्य देखने के लिये आये। उस समय रणक्षेत्र पूरा श्मशान का रूप धारण किये हुए था। शोणित की सरिता बड़े भयंकर वेग से वह रही थी। हाथी उस शोणित सरिता के कूल हो रहे थे. वीरो के केश सेवार के समान उलझ रहे थे, ढाले कच्छप हो रही थी, कृपाणे मत्स्यों का रूप धारण किये हुए थीं और कुन्तल भीम भुजंगम का भ्रम उत्पन्न करते थे।

कबन्ध अब तक इधर-उधर दौड़ कर भयंकर मार-काट मचा रहे थे। कही पर भूत पिशाच डाकिनी इत्यादि आनन्द पूर्वक विहार कर रही थी, कोई किसी अभिमानी नरेश्वर का शिर कन्दुक के समान उछाल रही थी, कोई अंता-

वली की माला पहन रही थी, कोई रुद्र को अर्पण करने के लिये मुण्डमाला बना रही थी, कोई रक्त पीने मे मत्त थी, और कोई अपने प्रेमी को कपाल प्याले में सद्यशोणित पिला रही थी। इस प्रकार प्रेत गण भाँति भाँति के यथेष्ट विहार कर रहे थे। जम्बुक और गृद्धों का सिद्ध पाक तैयार था परन्तु यह लोग उसे न खाकर ईर्ष्यावश परस्पर लड रहे थे, चील्हे आकाश मे पल-खण्ड लेकर उडती थी, परन्तु ऊपर ही गृद्ध उन्हें छीन लेते थे।

कुरुक्षेत्र की सारी संग्राम भूमि हताहतो से परिपूर्ण थी। वीरों के आयुध मुकुट इत्यादि पृथ्वी पर पडे हुए ऐसे चमकते थे, कि मानो आकाश से अगणित देदीप्यमान नक्षत्र खण्ड गिर पडे हों।

थोडी ही देर में भीषण सिंहनाद इन दर्शक वीरो के कर्ण-गोचर हुआ, यह महाबाहु भीमसेन और दुर्योधन के परस्पर प्रचारणा का घोर शब्द था, इन दोनो वीरो में आज अन्तिम गदा युद्ध था। दुर्योधन अपने शतन्बाधव निधन का वैर परि-शोधन करने के लिये भीमसेन से लड रहा था और भीमसेन भी कृष्णा के केशाम्बराकर्षण के दारुण अपमान का कारण दुर्यो-धन को बिना मारे चैन लेने वाले नहीं थे। इस गदा युद्ध के दर्शक व्यास, बलभद्र, कृष्ण और विदुर थे।

गदा युद्ध में दोनों ही बड़े निपुण थे, दुर्योधन ने बलराम जी से गदा युद्ध सीखा था, और भीमसेन ने द्रोणाचार्य से। शारी-रिक शक्ति में भीमसेन दुर्योधन से अधिक थे, परन्तु गदा युद्ध

कौशल मे दुर्योधन भीमसेन की अपेक्षा अधिक दक्ष था।

भीमसेन अपने चण्डगदाभिघात से दुर्योधन को मार डालने की पूर्ण चेष्टा कर रहे थे, और वह भी भीम को नष्ट करने मे कोई कसर नही उठा रखता था। थोड़ी ही देर मे युद्ध करते करते दोनो ही वीरो के अंग रक्त रंजित हो गये। अन्त मे दुर्योधन वली पड़ने लगा, और भीमसेन थके से मालूम होने लगे। इस पर दुर्योधन ने कहा कि हे भीम तुम निश्चिन्त रहो, भयभीत मत हो। कौरव वीर निर्बल शत्रु पर कभी आघात नही करते। भीम को दवते हुए देख कर वेद व्यास को वड़ा आश्चर्य हुआ। युधिष्ठिर की दीन दशा का वर्णन करते नही वनता। अर्जुन ने अपना कार्मुक सॅभाला, इसमे प्रसन्नता केवल वलरामजी को हुई।

थोड़ी ही देर मे युद्ध का रंग वदला। शीतल पवन के स्पर्श से पवनकुमार (भीमसेन) के शरीर मे न जाने कहाॅ से अपूर्व वल आ गया और वे सिंहनाद करके फिर दुर्योधन पर भयंकर गदा प्रहार करने लगे। इस वार कृष्ण का संकेत पाकर उन्होने दुर्योधन की जंघाओ पर गदाघात किया जिससे भग्नोरु दुर्योधन तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे पृथ्वी पर गिरते हुए देख कर व्यास तो आकाश को उड़ गये। वलभद्र जी (वलराम) को क्रोध और शोक ने घेर लिया। पाण्डव वीर वाहुपंजर वना कर भीमसेन को घटनास्थल से हटा ले गये।

दुर्योधन के साथ कपट युद्ध से वलभद्र जी को वड़ा

वली की माला पहन रही थी, कोई रुद्र को अर्पण करने के लिये मुण्डमाला बना रही थी, कोई रक्त पीने में मत्त थी, और कोई अपने प्रेमी को कपाल प्याले में सद्यशोणित पिला रही थी। इस प्रकार प्रेत गण भाँति भाँति के यथेष्ट विहार कर रहे थे। जम्बुक और गृद्धों का सिद्ध पाक तैयार था परन्तु यह लोग उसे न खाकर ईर्ष्यावश परस्पर लड रहे थे, चील्हे आकाश में पल-खण्ड लेकर उडती थीं, परन्तु ऊपर ही गृद्ध उन्हे छीन लेते थे।

कुरुक्षेत्र की सारी संग्राम भूमि हताहतो से परिपूर्ण थी। वीरों के आयुध मुकुट इत्यादि पृथ्वी पर पडे हुए ऐसे चमकते थे, कि मानो आकाश से अगणित देदीप्यमान नक्षत्र खण्ड गिर पडे हों।

थोडी ही देर मे भीषण सिंहनाद इन दर्शक वीरो के कर्ण-गोचर हुआ, यह महाबाहु भीमसेन और दुर्योधन के परस्पर प्रचारणा का घोर शब्द था, इन दोनों वीरो में आज अन्तिम गदा युद्ध था। दुर्योधन अपने शतन्बान्धव निधन का वैर परि-शोधन करने के लिये भीमसेन से लड रहा था और भीमसेन भी कृष्णा के केशाम्बराकर्षण के दारुण अपमान का कारण दुर्यो-धन को बिना मारे चैन लेने वाले नहीं थे। इस गदा युद्ध के दर्शक व्यास, बलभद्र, कृष्ण और विदुर थे।

गदा युद्ध में दोनों ही बडे निपुण थे, दुर्योधन ने बलराम जी से गदा युद्ध सीखा था, और भीमसेन ने द्रोणाचार्य से। शारी-रिक शक्ति में भीमसेन दुर्योधन से अधिक थे, परन्तु गदा युद्ध

कौशल मे दुर्योधन भीमसेन की अपेक्षा अधिक दक्ष था।

भीमसेन अपने चण्डगदाभिघात से दुर्योधन को मार डालने की पूर्ण चेष्टा कर रहे थे, और वह भी भीम को नष्ट करने मे कोई कसर नही उठा रखता था। थोड़ी ही देर में युद्ध करते करते दोनो ही वीरो के अंग रक्त रंजित हो गये। अन्त मे दुर्योधन वली पड़ने लगा, और भीमसेन थके से मालूम होने लगे। इस पर दुर्योधन ने कहा कि हे भीम तुम निश्चिन्त रहो, भयभीत मत हो। कौरव वीर निर्वल शत्रु पर कभी आघात नही करते। भीम को दबते हुए देख कर वेद व्यास को बडा आश्चर्य हुआ। युधिष्ठिर की दीन दशा का वर्णन करते नही बनता। अर्जुन ने अपना कार्मुक सँभाला, इसमे प्रसन्नता केवल वलरामजी को हुई।

थोड़ी ही देर मे युद्ध का रंग वदला। शीतल पवन के स्पर्श से पवनकुमार (भीमसेन) के शरीर मे न जाने कहाँ से अपूर्व वल आ गया और वे सिहनाद करके फिर दुर्योधन पर भयंकर गदा प्रहार करने लगे। इस वार कृष्ण का संकेत पाकर उन्होने दुर्योधन की जंघाओ पर गदाघात किया जिससे भग्नोरु दुर्योधन तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे पृथ्वी पर गिरते हुए देख कर व्यास तो आकाश को उड़ गये। वलभद्र जी (वलराम) को क्रोध और शोक ने घेर लिया। पाण्डव वीर वाहुपंजर वना कर भीमसेन को घटनास्थल से हटा ले गये।

दुर्योधन के साथ कपट युद्ध से वलभद्र जी को वड़ा

रोष आया, क्योंकि भीम ने भद्रता को तिलाञ्जलि देकर ही गदा युद्ध के नियम के प्रतिकूल दुर्योधन के जंघा पर आघात किया था। वे कहने लगे कि आज भीम ने जैसा निशम्म व्यवहार किया है, उससे वीरता का मुख कलंकित होता है। मैं आज भीम का वक्षस्थल विदीर्ण करके दुर्योधन के जघ-भग का बदला लूँगा। बलभद्र को क्रोधित देख कर जघभग दुर्योधन धीरे धीरे घुटनो के बल उनकी ओर बढने लगा और कहने लगा कि भगवन् गुरुदेव आप शान्त हो, अब क्रोध करने से कोई लाभ नही है, जो कुछ होना था सो हो चुका। मेरा जघभग होने से अब प्रकारान्तर से संग्राम समाप्त हो चुका, अब इन पाण्डवो को जीवित रहने दीजिये जिससे स्वर्ग मे मुझे जल तो मिले।

बलभद्र जी ने कहा कि नही यह कैसे हो सकता है? क्या तुम स्वर्ग यात्रा अकेले ही करोगे यदि यह पाण्डव भी तुम्हारे साथ भेज दिये जावे तो इसमे कोई हर्ज है। दुर्योधन ने कहा कि नही महाराज ऐसा न कीजिये, क्षमा कीजिये। मेरे साथ एक धोखा भले ही किया गया है परन्तु मैंने भी इनके साथ न जाने कितनी बार धोखे किये हैं।

दुर्योधन और बलभद्र में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि रणक्षेत्र में महाराज धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी दुर्योधन का पुत्र और रानियाँ आ पहुँचीं और वे महाराज को इधर-उधर ढूँढ़ने लगे, परन्तु वह तो व्यथा के मारे व्याकुल

दशा मे समन्तपंचक मे पड़े थे। जब उन्होंने बहुत पुकारा तब विवश होकर दुर्योधन ने उत्तर दिया, कि भीमसेन ने आज मेरा जंघभंग कर दिया है, इसलिये मै उठ कर आपके चरण वन्दना करने योग्य भी न रहा। इतने ही में दुर्योधन का पुत्र दुर्जय अपने पिता के उत्संग मे बैठने के लिये आग्रह करने लगा, तब उसने कहा कि नही पुत्र तुम यहाँ नही बैठ सकते, क्योंकि मेरे असह्य पीड़ा हो रही है।

धृतराष्ट्र को दुर्योधन का जंघभग हो जाने का बडा दुःख हुआ। गान्धारी को भी बड़ा शोक हुआ, पौरवी और मालवी के दुःखो का वर्णन करना असम्भव है। धृतराष्ट्र का व्याकुल देख कर दुर्योधन ने कहा कि महाराज आप इस प्रकार क्यो दुखित होते हैं, मैंने सदा अपने अभिमान की रक्षा की। जिस आत्माभिमान के साथ मै उत्पन्न हुआ था उसी को लेकर मै इस संसार मे जा रहा हूँ। आप महाराज सगर के समान हम लोगों का मरण दुख शान्त पूर्वक सहन कर ले, क्योंकि वीरो की अन्त मे यही गति होती है। माता की ओर देख कर दुर्योधन ने कहा कि हे वीर प्रसू जननी! धैर्य धारण करो तुम्हारे पुत्र ने संग्राम भूमि से पीछे पैर नहीं रक्खा यह जान कर तुम्हे संतोष होना चाहिये।

अपनी रानियो की ओर देख कर दुर्योधन ने कहा कि अरी वीर रमणियों तुम्हे भी शोक न करना चाहिये तुम्हारा पति युद्ध से भग कर नही मारा गया। दुर्जय की ओर आकृष्ट होकर

दुर्योधन कहने लगा कि पुत्र अब तुम युधिष्ठिर को ही अपना पिता मानना और सुभद्रा और द्रौपदी को अपनी माता के समान जानना, कुन्ती की आज्ञा की कभी अवहेलना न करना, और युधिष्ठिर के क्षौमवलित दक्षिण-बाहु को छू कर मुझे जला-ञ्जलि दे दिया करना।

दुर्योधन अपने जीवन से निराश होकर आत्मीय जनों से इस प्रकार अन्तिम विदा मांग ही रहा था कि सहसा उसे धनुष टकार का शब्द सुनाई पडा जिसे सुनकर वायस मण्डली भय-भीत होकर आकाश मे उडने लगी। यह वीर अश्वत्थामा था और यह कहता हुआ आ रहा था कि अभी अकर्णाकृष्ट-कार्मुक अश्वत्थामा जीवित है। वह अपने पिता को जलाञ्जलि देने मे व्यग्र था कि इतने ही में कौरवराज के साथ धोखा किया गया।

अश्वत्थामा मरे हुये गज-पदाति-संकुलित कुरुक्षेत्र के मैदान में दुर्योधन को ढूढता हुआ वही पहुँच गया जहाॅ पर वह गदा घुमा कर गृद्ध आदिक पक्षियों से अपनी रक्षा कर रहे थे। अश्वत्थामा को देखकर दुर्योधन का शोक उमड पडा, परन्तु उसने इस दुर्बल भाव को अपने हृदय में दबा लिया। उसे कुछ खिन्नसा देख कर अश्वत्थामा कहने लगा कि क्या भीम ने महाराज ऊरू भग करने के साथ साथ अभिमान भंग कर दिया, आप धैर्य धारण करो, आज मैंने पाण्डवों का नाश करने की प्रतिज्ञा कर ली है, चाहे कोई भी शक्ति उनकी सहायता क्यों न करे, आज मैं उनका निधन किये बिना रह नहीं सकता।

दुर्योधन कहने लगे कि गुरु-पुत्र अब धनुष रख दो। वीरा-ग्रणी भीष्म शर-शय्या पर पड़े हैं, आपके पिता परलोक पधारे, कर्ण संग्राम भूमि मे मारे गये, इससे प्रतीत होता है कि विधाता मेरे विरुद्ध है। आपने मेरा अभिमान भंग होने के सम्बन्ध मे कहा, इस विषय मे इतना ही कहना है कि अभि-मान रक्षा के लिये ही मैं इस कुलक्षय-कारी महायुद्ध मे प्रवृत्त हुआ था। मैंने द्रौपदी पर अत्याचार किया, पाण्डवो को कपट-पूर्वक द्यूत क्रीड़ा मे हरा कर उन्हे वनवासी बनाया, महारथी अभिमन्यु का मैंने छल से विराध वध करवाया। कहाँ तक कहूँ मैंने छल करके पाण्डवों के साथ एक से एक बढ़कर अपकार किये, यदि उन्होंने इस बार थोडा सा छल करके मुझे धराशायी करा दिया तो क्या हुआ।

अश्वत्थामा कहने लगा कि मैं तो पाण्डवो के मारने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, इसलिये आज रात्रि को उन्हे रणाग्नि में भस्म करके ही छोड़ूँगा। यह कह कर उसने दुर्जय से कहा कि पुत्र ! इधर आओ, मैं तुम्हे कौरवो के सिहासन पर अभिषिक्त करता हूँ, अब तुम अपने पिता के राज्य का उपभोग करो।

दुर्योधन दुर्जय से कहने लगा कि अच्छा गुरुपुत्र ने तुम्हे राजा बना दिया, अब मेरे हृदय का अभिलाप पूर्ण हो गया। देखो आकाश मण्डल मे खड़े हुए शान्तनु आदिक हमारे पूर्वज हमे बुला रहे हैं, इसलिये अब हम परलोक की यात्रा करते हैं। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।

अभिषेक—नाटक

सीतान्वेषण तत्पर भगवान रामचन्द्र और लक्ष्मण चलते-चलते किष्किन्धा के निकटवर्त्ती ऋष्यमूक पर्वत पर जा पहुँचे। यहाँ पर सुग्रीव से उनकी भेंट हुई, जिसे उसके भाई वालि ने अकण्टक राज्य सुख प्राप्त करने की दुष्चेष्टा के कारण निर्वासित कर दिया था। वनिता वियोगी सुग्रीव भी इस समय रामचन्द्र के समान ही दुखी थे, इसलिये इन दोनों में मैत्री हो गई और ये पारस्परिक सहाय्य के आदानप्रदान करने के लिये बद्धप्रतिज्ञ हुए। रामचन्द्र सुग्रीव से कहने लगे कि मैं इसी बाण से तुम्हारे शत्रु का हृदय विदीर्ण करके उसे सदा के लिये पृथ्वी पर सुला दूँगा, इसलिये तुम भयभीत न हो, और देखो युद्ध के लिये सन्नद्ध होते ही वालि किस प्रकार मृत्यु का ग्रास होता है।

सुग्रीव निवेदन करने लगे कि महाराज आपकी कृपा से वालि की तो कोई बात ही नही, मैं अमरावती को भी जीत सकता हूँ, अत इस चेष्टा में मेरे लिये कोई सन्देह का अवकाश नही। इसका कारण यह भी है कि मैंने देखा था कि आपका तीक्ष्ण बाण सप्त तालों को भेद करके पाताल तक चला गया था और वहाँ से फिर आपके तरकस में लौट आया था।

हनुमान जी कहने लगे, महाराज आपके धैर्य दिलाने से हमारे लिये शोक और भय का कोई अवकाश नही, इसलिये अब सुरम्य पर्वत पर आइये और हमे अश्वासन दिलाइये। फिर क्या था, सब लोग निर्दिष्ट मार्ग पर चल पड़े और वन को पार करके वालि के परिघबाहुदण्डों से परिरक्षित किष्किन्धा मे आ पहुँचे। सुग्रीव ने कहा कि आप थोड़ी देर के लिए ठहर जायँ, जिससे मैं त्रैलोक्य को अपनी जलद गम्भीर घोषणा सुनाकर कम्पित कर दूँ। यह कहकर सुग्रीव ने सिंहनाद करते हुए वालि को युद्ध के लिये चेतावनी दी।

वानर व्याघ्र बालि भला सुग्रीव की प्रचारणा कब सुनने वाला था, इसलिये वह तत्काल युद्ध के लिये चल पडा, और अपनी स्त्री तारा से कहने लगा कि देखो आज सुग्रीव का वध करके ही आऊँगा, चाहे स्वय भगवान ही उसका पक्ष समर्थन करते हुए मेरे विरुद्ध क्यो न खड़े हों, परन्तु आज मैं उनका भी दर्प चूर्ण करके सुग्रीव को उसकी नि.शृसता का फल अवश्य चखाऊँगा।

तारा कहने लगी, प्राणनाथ ! इतनी शीघ्रता न कीजिये, युद्ध में जाने से पहिले मंत्रियों से परामर्श कर लीजिये। मेरा तो यह अनुमान है कि सुग्रीव किसी लोकोत्तर वीर के अप्रमेय पराक्रम के बल पर ही आपसे लड़ने आया है, इसलिये आप शान्त हो। वालि बोला कि हे प्रिये, तुझे मेरी भुजाओं के लोकोत्तर बल का पता नहीं, इसलिये तू अबला-सुलभ कोमलता के कारण भय कातर हो रही है। जब देवासुर समुद्र मन्थन के लिए वासुकी की डोरी से मन्थराचल द्वारा समुद्र मथने के कारण परिश्रान्त हो रहे थे, उस समय मैं वहाँ उनका परिहास करने गया था, और अकेले ही बहुत देर तक समुद्र मथता रहा था। मेरा पराक्रम देखकर अखिल देवासुर समाज चकित हुआ था। इसलिये मैं अब सुग्रीव का शिर फोड़ने जा रहा हूँ, तुम अन्तःपुर में जाओ।

तारा को तो इस प्रकार समझा बुझाकर वालि ने अन्तःपुर में भेज दिया और आप गदा लेकर सुग्रीव से लड़ने को चल पड़ा। वालि को आता देखकर सुग्रीव भूखे सिंह के समान उस पर झपट पड़े, परन्तु उस महाबली को हराना उनकी शक्ति से बाहर था। वालि के विकट प्रहारों से सुग्रीव का साहस चूर्ण हो गया और वह पृथ्वी पर गिरने ही को थे कि हनुमान ने आकर भगवान से कहा कि सुग्रीव अधिक लड़ने में असमर्थ हैं और थोड़ी ही देर में पृथ्वी पर गिरे जाते हैं। कृपया अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कीजिये। भगवान ने कहा, अच्छा देखो, वालि

अभी पृथ्वी पर दिखाई पडता है।

यह कहकर उन्होंने अपने तरकस से एक वाण निकाला और उसे धनुप पर चढ़ाकर वालि के वक्षस्थल को लक्ष्य करके चलाया। उसके लगते ही वानर सज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु ज्योंही उसे चेत आया त्योंही उसने नामाकित वाण को देखकर तुरन्त जान लिया कि महावाहु रामचन्द्र जी ने उसके साथ धोखा किया है। फिर क्या था, वह भगवान से कहने लगा कि मैंने आपका कोई अपकार नही किया, अत' हमारे पारस्परिक वन्धु वैरानुवन्ध मे आपको किसी प्रकार का भाग नही लेना चाहिये था। यह निर्दय एव पक्षपात पूर्ण कार्य-कलाप आपको बिलकुल शोभा नहीं देता। आपने मुझे धोखे से मार कर वडा अनुचित कार्य किया। चेष्टा से आप बडे सौम्य मालूम होते हो परन्तु आपके कार्य बड़े क्रूर हैं। आपने मुझे अन्य वीर के साथ लडते समय मारकर युद्ध सम्बन्धी नियमों की अवहेलना करते हुए धर्म के विरुद्ध आचरण किया है।

भगवान पूछने लगे इसमें कौन सा अनुचित कार्य है। आखेट करने वाले बहुधा छिपकर ही अपने बध्य पशुओं को मारते हैं। तुम भी इस समय निरे पशु हो रहे थे, इसलिये मैंने तुम्हें उसी प्रकार से मारा। बालि ने कहा कि मैं क्यों पशु हूँ ? पराई स्त्री को छीन लेना और उसके साथ विवाह करना हम बानरों का धर्म है। फिर यदि मान लिया जाय कि यह अधर्म है, तो यह

सुग्रीव भी तो गुरुतर अपराधी है, इसलिये इसे मुझसे अधिक दंड मिलना चाहिये। भगवान ने कहा—ऐसा हो सकता है, परन्तु कनिष्ठ भ्राता की स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखने वाले ज्येष्ठ भ्राता को तो मार डालना ही चाहिये। उसकी क्षमा का विधान शास्त्रो ने भी नहीं किया है। क्या तुम्हे कोई इसका उदाहरण मालूम है। वालि इसके उत्तर मे मौन रहा और कहने लगा कि आपके द्वारा दंडित होकर मेरे पापो का प्रायश्चित्त हो गया।

अब सुग्रीव का बन्धु-प्रेम बहुत बढ़ गया, और वह रोने लगे। उनको शोक विह्वल देखकर वालि कहने लगा, वत्स ! चिन्ता न करो, जो होना था सो हो गया। अंगद की शिक्षा का सुन्दर प्रयत्न करना। यह कहकर उसने अंगद को भगवान के हाथ सौप दिया, और सुग्रीव को अपना स्वर्ण कंठहार दे कर उससे कहा कि उर्वशी प्रमुख सुर सुन्दरियाँ मेरा स्वागत करने के लिये उत्सुक हो रही हैं। यमराज ने मेरे लिये सहस्र हंस वाला रथ भेज दिया है इसलिये मैं जाता हूँ। इतना कहकर वह सदा के लिये सो गया। भगवान रामचन्द्र ने सुग्रीव के द्वारा उसका अन्त्येष्टि संस्कार कराया और इससे निवृत्ति पाकर उनको किष्किन्धा का वानर-राज बनाया।

(२)

ककुभ नाम का वानर आज भोजन करने मे व्यस्त था क्योंकि सुग्रीव ने सीता की खोज के लिये चारो ओर वानर सेना भेजी थी, और उन्हें भोज भी दिया गया था। अंगद की संरक्षता

में एक वानर-दल दक्षिण की ओर गया। जब कुछ दिन तक इनका कोई समाचार न मिला तो सुग्रीव ने विल्वमुख नामी वानरचर को अंगद आदिकों का पता लगाने भेजा। उसे ककुभ द्वारा मालूम हुआ कि सम्पाति से सीता का पता पाकर मारुतनन्दन महेन्द्र पर चढ गये और वहाँ से समुद्र फाँद कर सीता को ढूँढ़ने के लिये लका चले गये।

रावण सीता को हर लाया था। तब से उसने उनको राज-बन्दिनी बनाकर अशोक वाटिका में रक्खा था और उनके सतीत्व एव दृढता की परीक्षा करने के लिये उसने उन्हें भाँति भाँति के प्रलोभन भी दिये थे। उनके साथ विवाह करने का घृणित प्रस्ताव करके विकट वेषिनी राक्षसियों को उसके चारों ओर नियुक्त करके कहा था कि यदि यह मेरा प्रस्ताव एक महीने की अवधि तक स्वीकार न करे, तो इसे मार डालना। सीता इन्हीं घोर राक्षसियों के बीच में बैठी हूई अपने भाग्य की विडम्बना करके कह रही थी कि न जाने क्यों मेरे प्राणों को इस हतक शरीर पर इतनी ममता है कि वे इतने दुख मे भी इसे छोड कर चले नहीं जाते। मुझे भगवान से मिलने की कोई आशा ही नहीं। ईश्वर जाने भगवान को मेरे वियोग में कैसे चैन पडता होगा, जब स्वय मुझे उनका वियोग असह्य हो रहा है।

इसी समय हनुमान जी ने लका में प्रवेश किया। लका एक विशाल शिखर पर बसी थी। उसमे एक से एक बढ कर भव्य भवन थे। नगर में चारो ओर वाटिकायें बनी थीं। राजसौध की

शोभा अकथनीय थी। हनुमान जी अपने मन मे कहने लगे कि रावण का यह सारा ऐश्वर्य उसके विध्वंस का कारण होगा। मैंने सम्पूर्ण लंका को देख डाला, रावण के अन्तःपुर का कोना-कोना छान डाला, परन्तु सीता कही दृष्टिगोचर नही हुई। मेरे सारे प्रयास व्यर्थ हुए। इसलिये अब इस मीनार पर चढ़ कर देखूँ।

ऊपर चढ़ कर हनुमानजी ने अशोक वाटिका पर दृष्टि डाली। यह बडी ही सुहावनी एवं नेत्राभिराम थी। इसमे बड़े-बड़े वृक्ष लगे थे। मध्य मे एक कृत्रिम पर्वत शिखर बनाया गया था। चारों ओर फुव्वारे और नहरे चल रही थीं। न जाने कितने सदा-बहार के वृक्ष लगे थे। थोड़ी देर के बाद हनुमान जी की दृष्टि इसके एक साल वृक्ष पर पडी, जिसके नीचे घोरदर्शना राक्षसियों के बीच में सीता इस प्रकार बैठी थी जैसे घनी सजल जलद माला के बीच मे सौदामिनी स्थिर हो। सीता की एक वेणी देखकर हनुमान जी ने अनुमान कर लिया कि हो न हो यह ही विरह-विधुरा मैथिली होगी। व्रतो के कारण उनका गात्र कितना कृश हो गया है। अविरल अश्रुधारा प्रवाह के कारण उनका मंजुल मुख-मयंक हीनप्रभ हो रहा है और यह आतप क्लान्त मालती माला के समान मालूम होती है।

हनुमान जी सीता को इस प्रकार देखकर दुखित हो ही रहे थे कि दूसरी ओर से प्रमदा जनों के साथ प्रेम उन्मत्त रावण आता हुआ दिखलाई पड़ा। उसे देखकर हनुमान जी ने अपने मन में कहा कि अब मैं अपने को अशोक वृक्ष की सघन पत्र-

मंडित शाखाओं में छिपालूँ और देखूँ कि रावण क्या करता है।

इतने ही में रावण अशोक वाटिका में आ पहुँचा और कहने लगा कि देखो भाग्य की गति कैसी प्रबल होती है। मैंने देव वाहिनी को मथ डाला। ऐरावत के दन्तप्रहारों को अपने वक्षस्थल पर सह लिया और इन्द्रायुध के आघातों को इसी पर कुंठित किया, परन्तु यह सर्व सुन्दरी सीता मेरी ओर दृष्टिपात तक न करके तापस कुमार राम के प्रेम में मग्न रहती है। नील नभो-मडल में विचरण करने वाले मृगांक मूर्त्ति की शीतल मयूख माला मेरे लिये ज्वाल-माला हो रही हैं और मेरी स्मराग्नि को और भी प्रदीप्त करती है। सीता राक्षसियों से घिरी हुई शिसपा मूल पर बैठी हुई रामचन्द्र के ध्यान में मग्न है। सद्यछिन्न गज दन्त के समान इसके कपोल पीले हो रहे हैं। व्रतोपवास के कारण इसके गात्रों मे कृशता आगई है और यह जलद माला से घिरी हुई सुधाशु की रेखा मात्र के समान मालूम होती है। इसने मेरी प्रणय भिक्षा पर पाद प्रहार करके अपना ध्यान राम में लगा रक्खा है। अब रावण सीता के निकट जाकर कहने लगा कि प्रिये! इस कठिन तपस्या को छोडकर मेरी ओर देखो। क्षीण विभव राम की आशा छोड़कर मेरी प्रणियनी बनो और आनन्द से जीवन व्यतीत करो।

रावण के ऐसे घृणित प्रस्ताव को सुनकर सीता ने कहा—तुम कितने मूर्ख हो। तुम्हें इस बात का पता नहीं

कि मैं तुम्हे अभी शाप देकर भस्म कर सकती हूँ। तुम अभिशापित हो, देवता भी अपने धर्मपथ से विचलित हो गये हैं। यदि ऐसा न होता तो हे पापात्मा राक्षस तुम्हारा अन्त हो गया होता। इतने मे किसी ने कहा कि स्नान बेला आगई इसलिये लंकाधिनाथ को अब चलना चाहिये। यह सुनकर रावण तत्काल वहाँ से चल दिया, परन्तु वह अपने मन मे सोचता जा रहा था कि सतीत्व मे कितना बल होता है। विश्व-विजयी रावण को आज सीता के शाप के भय के कारण उसके निकट तक जाने का साहस नहीं हुआ।

हनुमान जी अशोक वाटिका मे बैठे हुए रावण का सारा व्यापार देख रहे थे। उनको रावण द्वारा भगवान् रामचन्द्र जी का अपमान सुन कर बड़ा क्रोध आया और वह कहने लगे कि मैं इस राक्षस को अवश्य दण्ड देता, परन्तु विचार इतना ही है कि यदि मैं अपने प्रयास मे सफल हुआ तब तो सब कुछ है, अन्यथा भगवान् के कार्य मे बड़ी बाधा पड़ेगी। यह विचार कर वह इस संकल्प से विरत हो गये। रावण के चले जाने पर राक्षसियों को निद्रा आगई इसलिये, उन्हें सीता से सम्भाषण करने का उपयुक्त अवकाश मिल गया। इस अवसर से लाभ उठाने के लिये हनुमान जी तुरन्त अशोक वृक्ष से नीचे उतर आये और कहने लगे कि पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की जय हो, और आपकी भी जय हो। यह सुनकर सीता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि शत्रु की नगरी में महाराज का

यशोगान करने वाला कौन हो सकता है। इसलिये उन्होंने अनुमान किया कि छद्मवेषी वानर भगवान् का सुयश सुनाकर वास्तव में मुझे वञ्चित करने के लिये यहाँ आया है, इस विचार से उन्होंने कुछ उत्तर न दिया।

हनुमान जी ने सीता जी को चुप-चाप देखकर पूछा कि आप चुप क्यों हो गई, कृपा करके आप मेरी ओर से सन्देह और भय हटा दीजिये। मैं हनुमान नाम का वानर हूँ और महाराज रामचन्द्र जी के पास से आपका कुशल वृत्त जानने को आया हूँ। सीता ने अपने मन मे सोचा अच्छा इससे क्या, अब तो यह भगवान् वह का यशोगान करता है, इसलिये मैं इससे सम्भाषण करूँगी। यह सोचकर वह कहने लगीं कि हे वानर श्रेष्ठ! कहो क्या समाचार लाये हो। यदि यह दुखद समाचार होगा, तो इस भग्न हृदय को और भी अधिक मानसिक पीडा होगी, परन्तु यदि वह समाचार विश्वासनीय है, तो अवश्य आशा की एक मन्द मरीचि प्रतीत होती है। इन दोनों विरोधी विचारों के कारण मेरा हृदय भग्न हुआ जाता है। परन्तु हे वानर, यह तो बतलाओ कि तुम लोगों में मैत्री कैसे हुई।

हनुमान ने उत्तर दिया कि जिस समय भगवान् रामचन्द्र आपको खोज रहे थे, उस समय चलते-चलते वह पम्पापुरी के निकट आये। वहाँ वानराधीश सुग्रीव से उनकी भेंट हुई। सम-दुख दुखी राजकुमारों ने अग्नि को साक्षी देकर परस्पर मैत्री की।

भगवान् ने सुग्रीव के जेष्ठ भ्राता वालि का वध किया और सुग्रीव की स्त्री को वालि के पंजे से छुड़ा कर उसे दिला दिया और उन्हे वानरराज बनाया। इस महान उपकार का बदला चुकाने के लिये सुग्रीव ने आपको ढूढ़ने के लिये चारो ओर वानर सेना भेजी। आप अधिक शोकाकुल न हों। आपके स्वामी भगवान् रामचन्द्र वानर भालुओं की सेना सहित आवेंगे और इस दुष्ट रावण को दंड देंगे। आप मेरा विश्वास कीजिये। मैं आपके स्वामी को अत्यन्त शीघ्र यहाँ ले आऊंगा। अतः आप भय और शोक को छोड़कर धैर्य धारण कीजिये।

सीताजी कहने लगी—"देवता भी बड़े कठोर हृदय हो गये हैं, क्योंकि वह मेरे प्राणनाथ को कष्ट सहते देखते हैं। कृपा करके मेरा सदेश ऐसे ढंग से कहियेगा जिससे स्वामी को अधिक वेदना न हो। यह कहकर सीताजी ने उन्हे आशीर्वाद दिया और कहा कि अब तुम जा सकते हो। जगज्जननी से शुभ आशीर्वाद पाकर हनुमान अपने मन मे कहने लगे कि रावण को कैसे एक वार देखने की चेष्टा करूँ। इस विचार को कार्य रूप मे परिणत करने के लिये उन्होने सोचा कि अशोक वाटिका को नष्ट कर डालूँ। इसके भग्न होते ही रावण मुझे पकडने के लिये अपने दूत भेजेगा।

(३)

सीता से विदा होकर हनुमान जी राजसौध के अन्तरवर्ती उद्यान मे जा पहुँचे और उसे भग्न करने लगे। शंकुकर्ण इस

दुर्घटना का समाचार रावण के पास लाया और कहने लगा कि जिस वाटिका के पुष्प और पत्तों को तोडने मे महारानी मदोदरी को भी सकोच होता था, जहाँ पर मलयाचल से आती हुई हवा भी धीरे से चलती थी, उसी को आज एक वदर ने सत्यानाश कर डाला। अब वहाँ की स्थिति वडी भयकर हो रही है। रावण ने पूछा कि ऐसा कौन दुरात्मा है जिसने अशोकावनिका को नष्ट करने का दुस्साहस किया है। यदि देवताओ का यह काम है, तो अमर होते हुए भी उन्हें दारुण दड दिया जावेगा।

शकुकर्ण ने देखा कि रावण ताम्राक्ष होने के कारण इस समय कल्पान्त का भास्कर हो रहा है, इसलिये उसने निवेदन किया कि महाराज यह दारुण कर्म एक वानर का है, जिसको शिष्टाचार का ज्ञान ही नहीं। रावण ने उसे आज्ञा दी कि उस वानर को मार कर यहाँ ले आओ। महाराज की आज्ञा पाकर शकुकर्ण वाटिका को चला गया और वहाँ जाकर उसने देखा कि वड़े-बड़े वृक्षों को वानर ने उखाड कर फेंक दिया था और लतागृहों एव निकुञ्जों को नष्ट करके उद्यान रक्षकों को वड़े आश्चर्य में डाल रक्खा था। उसका सिंहनाद सुनकर वड़े-वड़े वीरों का धैर्य छूट जाता था। पहाड़ियों को उसने मुष्टिका प्रहार से चूर्ण कर दिया था।

वाटिका की यह भयकर दशा देखकर शकुकर्ण तत्काल रावण के पास लौट आया और कहने लगा कि महाराज वानर ने अपने अकाण्ड ताण्डव से वाटिका में इस समय कल्पान्त का

दृश्य उपस्थित कर रक्खा है, इसलिए उसके पकड़ने को आप सेना भेजिये। रावण ने कहा—अच्छा सहस्र वीरों को ले जाओ। देखो ! अक्षयकुमार से कह देना कि वह वानर को मारे नहीं, जीवित ही उसे यहाँ पकड़ लाये। "जैसी आज्ञा" कहकर शकुकर्ण चला गया और थोड़ी देर में लौटकर कहने लगा कि "महाराज पाँच सेनापति अक्षयकुमार के साथ गये थे, उन्हें देखकर वह कुछ भयभीत होने की मुद्रा दिखाते हुए राज-मन्दिर के शिखर पर चढ़ गया, और वहाँ से सोने की छड़ उखाड़कर उनके प्रहार से सब को मार डाला और फिर अक्षयकुमार पर आक्रमण करके उनका गला घोंट दिया। इस दारुण समाचार को सुनकर राजकुमार इन्द्रजीत बड़े क्रोध में आकर उसे पकड़ने को गये हैं। मुझे विश्वास है वह उसे अवश्य पकड़ लायेंगे। रावण ने कहा कि अच्छा तुम रणक्षेत्र को जाओ और नूतन समाचार लाओ। इन्द्रजीत अद्वितीय धनुर्धर है। युद्ध में वीर या तो विजय वैजयन्ती फहराते हुए अपने घर आते हैं या वहीं लडते-लड़ते परम धाम को पधारते हैं। आज न जाने क्यों मेरा चित्त बड़ा उद्विग्न हो रहा है।

शंकुकर्ण ने युद्ध मे लौटकर महाराज को सूचित किया कि आपकी विजय हुई। राजकुमार ने भयङ्कर युद्ध मे दुष्ट वानर को परास्त करके रस्सी में बाँध दिया। यह सुनकर रावण को बड़ा परिताप हुआ और वह कहने लगा इन्द्रजीत को जीतने वाला वीर भी वानर को मार न सका। कुछ सोच-विचार कर उसने

विभीषण को बुलाया। विभीषण ने आकर महाराज को अभिवादन किया और सारा हाल सुनकर कहा कि महाराज आपकी मनो-वृत्ति कैसी हो रही है मैंने न जाने कितनी वार आपसे निवेदन किया है कि आप सीता को इसके पति के पास भेज दे, परन्तु आपने कुछ ध्यान न दिया। रावण विभीषण से पूछने लगा, तुम खिन्न क्यों हो। विभीषण ने उत्तर दिया जहाँ राजा अपने मन्त्री का सत्परामर्श सुनने को तैयार न हो, वहाँ शोक के अति-रिक्त और क्या हो सकता है। सम्भव है कोई आपत्ति आ जावे। रावण ने कहा इस प्रसंग को समाप्त करो और दुष्ट वानर को यहाँ लाओ। उसकी आज्ञा पाकर राक्षस-रक्षक हनुमानजी को रावण के सन्मुख ले गये।

राज-दरबार में जाकर हनुमानजी ने कहा कि यह वीर मुझे जीत कर नही लाया है। मैंने आपको देखने की अभिलाषा से ही ये सारा उपद्रव मचाया था, कहिये आप कुशल से तो है। रावण ने उसे देखकर विभीषण से पूछा कि क्या यही दुरात्मा वानर है जिसने अशोक-वाटिका को नष्ट किया है। विभीषण ने कहा—हाँ यही है, परन्तु इससे पूछिये यह है कौन। रावण के पूछने पर हनुमान ने उत्तर दिया कि मैं मारुत और अञ्जनी का पुत्र हूँ। भगवान रामचन्द्र का दूत बनकर सीता को देखने के लिए यहाँ आया हूँ। तुम पहिले रामचन्द्र की प्रचारणा सुनो। भगवान ने कहा है कि चाहे भगवान शंकर तुम्हारी सहायता करे या तुम स्वय जाकर पाताल के गहनतम कन्दराओं में जा छिपो, परन्तु

तुम्हें मेरा बाण छिन्न-भिन्न करके यमपुरी भेजेगा। रावण ने अट्टहास करके कहा कि देवताओं को तो मैंने परास्त किया, कुबेर से पुष्पक विमान छीन लिया और इन्द्र के वज्र तक को कुंठित कर दिया, परन्तु यह राम मुझसे युद्ध करने का साहस रखता है! हनुमानजी ने उत्तर दिया कि तुम्हारी वीरता का क्या कहना है, परन्तु यदि वास्तव में तुम सच्चे वीर थे, तो मैथिली को चुरा क्यों लाये थे। यह सुनकर रावण का क्रोध-कृशानु प्रदीप्त हो उठा। उसने राक्षसों को आज्ञा दी कि इस अविनीत वानर का अभी अन्त कर दो। यह देखकर विभीषण ने उसे शान्त किया और कहा कि महाराज दूत का वध करना राज-नीति के विरुद्ध है। यदि इसकी बातें आपको पसन्द नहीं हैं, तो कम से कम सुन तो लो यह क्या कहता है और तब फिर जैसा चाहो वैसा करो।

रावण कहने लगा कि विभीषण, तुम राजनीत की आड़ मे शत्रु के कटुवादी दूत का पक्षपात करते हो। इसके कहने से क्या हो सकता है। क्या मृग केसरी को मार सकते हैं। तुम व्यर्थ के लिए भयभीत हो रहे हो। यह सुनकर हनुमान जी ने कहा कि रावण! तुम भगवान की निन्दा कर रहे हो वो इसमे भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे शिर पर नाच रही है। रावण ने शंकुकर्ण से कहा कि अच्छा इस दुष्ट को यह दण्ड दो कि इसकी पूँछ में रुई और तेल चुपड़ कर आग लगा दो और इस प्रकार इसका अपमान करके लङ्का से निकाल दो।

फिर उसने हनुमानजी से कहा कि अरे वानर ! तापस कुमारों से कह देना कि मैंने बलपूर्वक तुम्हारी वनिता का अपहरण करके तुम्हें अपमानित किया है, इसलिए यदि तुम्हारे बाहुओं में बल है या तुम धनुष-धारण करना जानते हो, तो मैं युद्ध के लिए तुम्हें प्रचारण करता हूँ। हनुमानजी ने कहा कि थोड़े ही दिनों में देखोगे यह लंका चारों ओर वानर सेना से घिरी हुई है और राक्षस उनके युद्ध घोष से भयभीत हो रहे हैं। यह कहकर वह रावण के सामने से चल दिये।

हनुमानजी के राजप्रासाद से बाहर आते ही विभीषण ने रावण से निवेदन किया कि महाराज मुझे इस समय राक्षस-वंश के विध्वंस होने के प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई पढ़ते हैं। इसका कारण यह है कि आप दुर्नीति को ग्रहण किये हुए हैं। यदि आप मेरा अपराध क्षमा करें, तो मैं आपसे यह कहने का साहस करूँ कि सीता-हरण के उपलक्ष में भयंकर संग्राम होगा जिसमें सारा राक्षस-वंश विध्वंस हो जायगा।

राक्षस-वंश विध्वंस का नाम सुनकर रावण ने रुष्ट होकर कहा कि तुम बड़े नीच हो। तुम मुझे संग्राम का भय दिखाकर हताश करना चाहते हो। मेरा तो यह अनुमान है कि तुम गुप्त-रूप से शत्रु पक्ष के समर्थक हो और ऐसी मीठी वार्त्ता से हमारे वीरों को निरुत्साहित करते हो। मैं ऐसे भाई का मुँह भी देखना पसन्द नहीं करता जो शत्रु का समर्थक है। विभीषण ने उत्तर दिया "अच्छा महाराज"। "यदि आप मेरा मुँह नहीं देखना

चाहते, तो मैं स्वयं जाता हूँ। मेरी प्रार्थना तो यही थी कि आप उचित मार्ग पर चलते, परन्तु यदि आप नहीं मानते तो मैं कंज-लोचन भगवान रामचन्द्र के पास जाता हूँ जो अद्वितीय धनुर्धर हैं और जिन्होंने रावण-वध का निश्चय कर लिया है। मैं उन्हीं दीन-बन्धु की सेवा मे रहूँगा और इस प्रकार अपने वंश-गौरव की रक्षा करूँगा जिसका प्रकारान्तर से अन्त होने वाला है।" यह कहकर विभीषण लंका से चल दिये।

(४)

भगवान रामचन्द्र विशाल वानर भालु सेना के साथ समुद्र के किनारे आ पहुँचे, जिसमे उत्ताल तरंगे उठ रही थी। इस समय सुग्रीव ने ज्योंही आकाश पर दृष्टिपात किया, त्योंही उन्होंने देखा कि एक राक्षस आकाश मार्ग से आ रहा है। उसे देखकर हनुमान जी ने वानरों को सावधान रहने की आज्ञा दी। भगवान ने कहा कोई घबडाने की बात नही, यह कोई भयंकर राक्षस नही मालूम होता। इतने मे ही विभीषण वानरी सेना के निकट आ पहुँचे और सोचने लगे कि मैंने न तो भग-वान को अपने आने की सूचना दी है और न मैं व्यवहार-कुशल ही हूं। इसके अतिरिक्त मै उनके शत्रु का भ्राता हूँ, ऐसी दशा मे वह मेरे हृदय के विचार कैसे समझ सकेंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि वह मेरे विषय मे क्या निश्चय करेंगे। परन्तु ऐसा नहीं, भगवान अन्तर्यामी हैं और वह सज्जन-दुर्जन के भेद भी जानते है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह

शरणागत पालक हैं, इसलिए मुझे चिन्तित नहीं होना चाहिये। थोड़ी देर मे उनकी दृष्टि भगवान के ऊपर पड़ी और उन्होंने भगवान को अपने आगमन की सूचना देने के लिए एक वानर के द्वारा उनसे प्रार्थना कराई।

हनुमान जी ने भगवान के पास जाकर निवेदन किया कि महाराज रावण का भ्राता विभीषण आपसे मिलने के लिये आया है। रावण का नाम सुन कर सुग्रीव ने कहा कि राक्षस छल-छन्द मे बड़े निपुण होते हैं, इसलिये पूर्ण रूप से परीक्षा हो जाने के अनन्तर ही वह यहाँ आने पावे। हनुमान जी कहने लगे कि वह भगवान का परम भक्त है और इनके पक्ष का समर्थन करने के कारण राक्षस-वृन्द मे निकाल दिया गया है। मैं यह बात भली भाँति जानता हूँ। यह सुन कर भगवान रामचन्द्र ने कहा कि अच्छा उसे आने दो।

भगवान की आज्ञानुसार विभीषण महाराज के सामने लाकर उपस्थित किया गया। भगवान ने उसका स्वागत किया और कहा कि मैं तुम्हे इसी समय से लका का राज्य देता हूँ। तुम्हारे आगमन से हमे सफलता अवश्य होगी, परन्तु यह समुद्र हमारे मार्ग मे बडा विघ्न डाल रहा है, इसके लिये क्या करना चाहिये? विभीषण ने उत्तर दिया कि महाराज इसके लिये विशेष रूप से चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि समुद्र आपको मार्ग नहीं देता है, तो एक तीक्ष्ण बाण के प्रहार से इसका जल शोषण कर लीजिये और दूसरा समुद्र बनाइये। यह

सुन कर भगवान रामचन्द्र को बड़ा हर्ष हुआ और वे क्रोध में आकर बोले कि यदि समुद्र मुझे मार्ग न देगा तो अभी अग्नि बाण से इसका जल शोषण कर लूँगा और सारे जल जीवों को मार डालूँगा।

रामचन्द्र जी की विकट घोषणा सुनते ही समुद्र भयभीत होकर काँपने लगा और बोला, महाराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं यह जानता हूँ कि आपने देवताओं की रक्षा के लिये मनुष्य का अवतार लिया है। चक्र-शंख-गदा-पद्मधारी नारायण ही मानो देवताओं की रक्षा के लिये आये हों। इतने ही में वरुण देव समुद्र से उठते हुए दिखाई पड़े। उनका मुख इन्दीवर के समान सुन्दर था, और वह मणिमण्डित मुकुट पहिने हुए थे। विभीषण ने उन्हें तुरन्त जान लिया। भगवान ने उनसे लंका जाने के लिये मार्ग माँगा और वह पथ प्रदर्शन करके अन्तर्द्धान हो गये।

भगवान ने हनुमान जी को आगे चलने का आदेश दिया। हनुमान जी चल दिये और लंका में आ पहुँचे। लंका को देख कर भगवान कहने लगे कि इस हेम मण्डित कुबेरपुरी को हमें अपने बाणानल में दग्ध करना पड़ेगा। यह कह कर वह सुवेल शैल पर ठहरे और नीलनल को आज्ञा दी कि सेना के निवास के लिये उचित स्थान बनावें।

अभी सेना निवास का प्रबन्ध हो ही रहा था, कि नल ने दो सन्दिग्ध वानरों को पकड़ लिया और उन्हें भगवान के

सम्मुख लाकर कहा कि इनके सम्बन्ध में क्या आज्ञा होती है। ये छद्मवेषी वानर हमें शत्रु के गुप्तचर मालूम होते हैं। वे कृत्रिम कपि वास्तव मे राक्षस थे। उनका नाम शुक सारन था और वे रावण के विश्वास पात्र गुप्तचर थे। विभीषण ने उन्हें भली भाँति देख कर पहिचान लिया। जब शुक सारन ने जान लिया कि अब उनका गुप्त रहना असम्भव है, तब तो उन्होंने कहा कि महाराज हम अवश्य राक्षस हैं और रावण की आज्ञा से यहाँ भेद लेने आये थे। रामचन्द्रजी ने कहा अच्छा इन्हें दण्ड न दो और इन्हें हमारी सेना का निरीक्षण करा दो। यह कह कर उन्होंने नील को आज्ञा दी कि इनको सारी सेना दिखा लावो। जब वे सेना देख चुके तब भगवान ने उनसे कहा कि हमारी ओर से रावण से कह देना कि तुमने मेरी स्त्री को चुरा कर युद्ध का सूत्रपात्र किया है। अत. अब सावधान रहना।

(५)

भगवान रामचन्द्र जी ने लकावरोध की आज्ञा दे दी और वानरों ने उसे घेर कर प्रलयकाण्ड उपस्थित कर दिया। प्रहस्त, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदिक वड़े-वड़े वीर युद्ध में मारे गये, परन्तु फिर भी रावण सीता के लौटाने को तैयार नहीं हुआ। रावण अब भी सीता के प्रेम में उन्मत्त हो रहा था, इसलिये वह अशोक वाटिका में आया और मैथिली से कहने लगा कि देखो मैंने इस लंका को जीत कर यहाँ का स्वामित्व प्राप्त किया है। तुम अब भी मेरे प्रति अनुराग नहीं करतीं। मैं अब तुम्हें

बरबस यहाँ से जाने न दूँगा, क्योंकि मैंने अभी युद्ध में राम-लक्ष्मण का वध किया है, इसलिये तुम राम को भूल जाओ। यह कह कर उसने विद्युज्जिह्व नामी राक्षस को आज्ञा दी कि तुम राम-लक्ष्मण के शिर ले आओ जिन्हें मैंने अभी संग्राम भूमि में काट कर फेंक दिया था, और सीता से कहो कि इन्हें पहिचान लो। अब तो न तुम्हारा पति ही संसार में है और न तुम्हारा देवर ही, इसलिये अब तुम मुझे अपना पति बनाओ।

उन कल्पित नर-शिरों को देख कर मैथिली शोक और भय के सागर में डूब रही थी कि इतने ही में एक राक्षस राम-राम चिल्लाता हुआ वहाँ आया। उसे घबराया हुआ देखकर रावण पूछने लगा कि इस प्रकार क्यों बक रहा है कहो तो वे दीन तपस्वी क्या कर रहे हैं।

राक्षस ने बड़े संकोच और भय के साथ कहा कि महाराज उन दोनों ने मेघनाद को मार डाला है। यह सुन कर रावण को विश्वास नहीं हुआ और वह कहने लगा कि भला इन्द्र-आदिक देवताओं का मान मर्दन करनेवाले मेघनाद को संग्राम भूमि में कौन परास्त कर सकता है। परन्तु जब राक्षस ने उसे विश्वास दिलाया, तब तो वह शोक के मारे मूर्च्छित हो गया और चेतना लाभ करने पर मेघनाद के लोकोत्तर शौर्य आदिक गुणों का स्मरण करके विलाप करने लगा। राक्षस चर ने उसे बहुत कुछ धैर्य बँधाया और कहा कि आप ऐसे वीर को इस प्रकार विचलित न होना चाहिये।

इतने ही में भगवान रामचन्द्र ने लंका के द्वार पर आकर रावण को युद्ध के लिये प्रचारण किया। वीर प्रचारणा सुनकर क्रोध कलित राक्षसराज ने अपना खड्ग खींच लिया और कहने लगा—अरे दुरात्मा तपस्वी! तू कहाँ जायेगा। यह कह कर करवाल घुमाता हुआ वह भगवान की ओर झपटा, परन्तु शीघ्र उसके ध्यान मे यह बात आई कि इस अधम सीता का ही पहिले वध करना चाहिये, जिसके कारण राक्षस-कुल पर घोर आपत्ति आई है। इसी विचार से प्रेरित होकर वह जानकी की ओर झपटा। रावण को घोर अनर्थ करते देख कर राक्षस ने कहा कि महाराज आप ऐसे वीरों को अवला वध के लिये प्रवृत्त होना शोभा नहीं देता। आप शत्रु का दर्प चूर्ण कीजिये। रावण ने कहा रथ लाओ, मैं अभी जाता हूँ और सीता से बोला कि देखो तुम्हारे पति को अभी वाणों से काट कर खण्ड-खण्ड करूँगा। यह कह कर रावण युद्ध के लिये चल दिया।

(६)

रावण और राम के लोमहर्षण संग्राम को देखने के लिये सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर आदिक अपने विमानों में वैठ कर नील नभो मण्डल में आ गये। आज युद्ध ने वडा भयंकर रूप धारण कर रक्खा था। राक्षस नाना प्रकार के आयुध प्रहार कर रहे थे परन्तु वानर पर्वत शिला और वृक्षों के प्रहार से राक्षसों को चूर्ण किये डालते थे। थोडी देर के वाद महत संग्राम होने लगा और रथारूढ रावण भगवान रामचन्द्र की ओर इस

प्रकार झपटा जैसे कार्तिकेय क्रौंचासुर पर्वत पर झपटे थे। फिर अपने चण्ड कोदण्ड को कान तक खींच कर रावण ने रामचन्द्र को बाण-जाल से आच्छादित कर दिया। भगवान को पैदल लड़ते देख कर इन्द्र ने अपने सारथी मातलि को आज्ञा दी कि तुम मेरा दिव्य रथ भगवान के पास ले जाओ। मातलि तुरन्त रथ ले आया, और भगवान रामचन्द्र उस पर चढ़ कर रावण से उसी प्रकार संग्राम करने को तैयार हुए जैसे त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिये रुद्र सन्नद्ध हुए थे।

अब युद्ध ने और भी भयंकर रूप धारण किया। भगवान ने अपने तीव्र बाणों से रावण के घोड़ों को काट डाला और उसकी ध्वजा पताकाओं को भी तोड़ कर तीव्र बाणों से उसे व्यथित किया। अवसर पाकर उन्होंने एक बड़ा भयंकर बाण उठाया और उसे धनुष पर चढ़ा कर बड़े क्रोध से रावण की ओर छोड़ा। बाण बादलों की घड़घड़ाहट के साथ धनुष से छूटा और रावण के शीशों को काट कर तथा पाताल भेदन करके भगवान के तरकस में लौट आया। रावण का इस प्रकार निधन देख कर देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने पुष्प वर्षा की और दुन्दुभी बजाई।

(८)

संग्राम-भूमि में रावण का संहार करके भगवान ने सीता को बुलवा भेजा। विभीषण मैथिली को ले आये, परन्तु भगवान् ने उनकी अग्नि परीक्षा करना चाहा, क्योंकि राक्षस राज

के गृह मे निवास करने के कारण उनके चरित्र पर सन्देह किया जा सकता था। सीता ने भगवान की इच्छा अनुसार अग्नि-प्रवेश किया, और अग्नि देवता उनको अपनी गोद में लिये हुए बाहर निकले। भगवान ने उन्हे पहिचान लिया और प्रणाम किया। उन्होने भगवान से कहा कि सीता इस पृथ्वी भर में सब से पवित्र है। यही तुम्हारी धर्मपत्नी है। इस को स्वीकार करो। तुम्हे इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि यह जनक की कन्या लक्ष्मी का अवतार है। भगवान ने कहा इनके विशुद्ध चरित्र के विषय मे मुझे कोई सन्देह न था, परन्तु जनता के सामने एक आदर्श उपस्थित करने के लिये मैंने इनकी अग्नि-परीक्षा की थी।

अब अग्नि देव ने भगवान रामचन्द्र का राज्याभिषेक किया। देवताओं, महर्षियो और दिग्पाल आदिको ने उनकी स्तुति की। थोड़ी देर मे भरत शत्रुघ्न पुर सर प्रजावृन्द भी वहाँ पर आये और भगवान की स्तुति करने लगे। रामचन्द्र जी ने मधुर वचनों से उनका परितोष किया। अग्निदेव आकाश को चले गये और पृथ्वी पर आनन्द का सागर तरगित होने लगा।
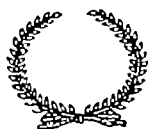
चारुदत्त

उज्जैनी एक पुरान-प्रख्यात नगरी है। यहाँ पर सार्थवाह वंशावतंश चारुदत्त निवास करते थे। किसी समय कमला की इनके ऊपर अनन्त कृपा थी, परन्तु चारुदत्त की तो बात ही क्या इस चंचला ने अपने प्राणवल्लभ भगवान रामचन्द्र पर भी स्थायी रूप से कृपा नहीं की। कालान्तर मे इसने चारुदत्त का आश्रय छोड़ कर किसी अन्य भाग्यशाली पुरुष का हाथ पकडा। कविवर बिहारीलाल जी ने यथार्थ ही कहा है कि सम्पत्ति सलिल के बढ़ने से मन रूपी कमल भी बढ जाता है, परन्तु उसके घटने से फिर वह घटता नहीं, चाहे जड़ ही क्यों न कुम्हला जाये। बिहारी ने मानो यह बात हमारे चरित्रनायक चारुदत्त ही को लक्ष करके कही थी। इस क्षीण विभव अवस्था में भी मैत्रेय जी का पूर्ववत सत्कार होता था। रदनिका नाम की परिचारिका के समादर में किसी प्रकार की कमी नहीं होने पाई थी। अभ्यागतों का आतिथ्य आज भी पूर्ववत होता था। बलि-

पूजनोपहार से देवता लोग पहिले के समान ही सन्तुष्ट किये जाते थे और यहाँ तक कि आर्थिक कष्ट के होते हुए भी सुन्दरी वसन्तसेना के साथ आपका अनुराग ज्यो का त्यों बना हुआ था। यो तो वसन्तसेना गणिका थी जिसके नाम मात्र से ही इस निबन्ध मे बहुत से लोगो को अश्लीलता का आभास दिखलाई पडने लगेगा, परन्तु यदि यह ध्यान-पूर्वक पढा जायगा तो सम्भवत दुर्भावना दूर हो जायेगी और पाठकों को पता चल जायगा कि उस काल की गणिका भी आदर्श रमणी होती थी।

एक दिन चारुदत्त और मैत्रेय जी अपने घर मे ही थे। पूजनोपरान्त चारुदत्त अपने क्षीण विभव जीवन पर परिताप प्रदर्शित करते हुए कहने लगे कि देखो दारिद्र भी बडा घोर पाप है। दरिद्र पुरुप साँस लेते हुए भी मृतक के समान हैं। कभी हमारे भी ऐसे दिन थे, जब गृहद्वार पर रक्खी हुई बलि को खाकर सारस हस आदिक यथेष्ट सन्तुष्ट हो जाया करते थे, परन्तु आज दुर्भाग्यवश घास में फँसी हुई उसी बलि को खाकर कीटों को भी सन्तोप नहींहोता। वास्तव में यह सब हमारे दुर्दिनों का फेर है। दुख का अनुभव करके सुखो का प्राप्त करना ऐसा प्रतीत होता है जैसे अधकार के अनन्तर दीप-दर्शन। परन्तु उत्कर्ष के बाद जिसका अपकर्ष हो जाता है वह जीता हुआ भी मृतक तुल्य है। चचला लक्ष्मी के रहने न रहने का कोई हर्प विपाद नहीं। हॉ गुणज्ञों की उदासीनता अवश्य दुख देती है।

विदूषक कहने लगे "गतान्यशोच्यानि"। उसके लिये परिताप करने मे क्या रक्खा है, जब यह चंचला पुरुष पुरातन की वधू स्वय उनकी ही नही हुई, तो और किसी की क्या होगी। चारुदत्त कहने लगे कि भाई मैत्रेय दरिद्र आदमी की बात पर कोई विश्वास नही करता, उसका लोग परिहास करते है उसकी सतवृतता पर सन्देह करने लगते हैं। उसके गाढानुरागी मित्र भी कालान्तर मे उससे विमुख हो जाते है। आपदा उसे घेर लेती हैं और उसके ऊपर ऐसे-ऐसे आरोप किये जाने लगते है जिनकी स्वप्न मे भी सम्भावना नहीं हो सकती थी। परन्तु यदि सच पूछिये तो हम वास्तव मे दरिद्र नहीं हैं, क्योकि हम सद्-गृहिणी के पति हैं। सम्पति विपत्ति मे समभावना रखने वाले ऐसे सहृदय की मैत्री हमें प्राप्त है। हम कभी सन्मार्ग से हटे भी नही। यह सब बाते दरिद्र दशा मे नहीं होती। इसलिये हम दरिद्र नहीं हैं।

राजा का स्यालक शकार वसन्तसेना के प्रेम-बन्धन मे ऐसा बुरी तरह आबद्ध था कि उसके बिना उसे सुरेन्द्र पदवी भी व्यर्थ मालूम होती थी। एक दिन जब वह अपने घर से चल कर थोडी ही दूर आने पाई थी कि शकार चेट और विट ने उसका पीछा किया। लाख ढीठ होते हुए भी वसन्तसेना अन्त मे अबला ही थी, अपने पीछे अन्धकार और रात्रि मे तीन-तीन गुंडों को देखकर वह घबरा गई। पहिले तो उसने पल्लविका, पर-भृतिका, मधुरिका एवं रसिका आदिक परिचारिकाओ को अपनी

सहायता को बुलाया, परन्तु जब उनसे किसी प्रकार की सहायता न मिल सकी तब विवश होकर भागी। शकार ने कड़क कर कहा चाहे पल्लविका को पुकार, चाहे परभृतिका को, परन्तु इससे कुछ हो ही नही सकता। मैं तुझे अवश्य पकड़ूँगा। विट कहने लगा—सुन री, हमारा यह सारा प्रदेश देखा हुआ है। चाहे जितना अन्धकार हो हम अपना मार्ग ढूंढ लेगे। यद्यपि हमे यह बात कहनी नहीं चाहिये थी, तथापि हम कहे देते हैं कि हमारे बल पुरुषार्थ, साहस के विषय मे जो तूने सुना है, उससे तुझे हमारी वीरता का अनुमान करना चाहिये।

वसन्तसेना अपने मन मे कहने लगी कि मै तो इस समय बड़ी आपत्ति मे पड गई हूं। सुना है गुण बड़े-बडे शत्रुओं को रिझा लते है, तो क्या मेरे लोकोत्तर गुण मुझे इस आपत्ति से नहीं छुडा सकेंगे। इसलिये वह कहने लगी कि मैं कुलीन पुरुषो की अथोप जीवनी गणिका हूँ। आप इससे क्या आशा रखते है। कहिये मुझे लेकर आप सन्तुष्ट होंगे या मेरे आभूषणो को। इसी प्रकार इन लोगो को बातो में झाँसा देकर वसन्तसेना न जाने कैसे छूट गई। इससे शकार को बड़ी निराशा हुई और उसने विट और चेट से पूछा तो वे कहने लगे कि महाराज क्या बतलायें अभी कहीं भग गई है, और सो भी हम लोगों को धोखा देकर। परन्तु अरी वसन्तसेना तू गाढा अन्धकार के कारण भले ही दृष्टिगोचर न हो सके, परन्तु तेरा गात्रेय सौरभ और नूपुर यह बता देंगे कि तू कहाँ है। विट कहने

लगा कि आज बडा अन्धकार है। ऐसा मालूम होता है कि मानो आकाश से अंजन बरस रहा है और अन्धकार शरीर को लीप रहा है तथा नीच पुरुष की सेवा के समान दृष्टि व्यर्थ हुई जाती है। गहन वन और अन्धकार दोनों ही एक दूसरे के सहायक हैं हम लोग आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहे हैं, परन्तु कुछ दिखाई नहीं देता।

इसी समय चारुदत्त ने मैत्रेय से कहा कि महाराज आज आप बलि दे आइये, क्योंकि पूजा करने के अतिरिक्त मुझे और भी बहुत-सा काम है। मैत्रेय कहने लगे कि मेरी बुद्धि इस समय न जाने कहाँ है। मुझे हरेक बात बहुधा वास्तविकता से विपरीत जंचती है। इसलिए मुझे इन देवताओं मे श्रद्धा नहीं है, परन्तु यदि आपका ऐसा ही आग्रह हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं मैं जाता हूँ, पर मेरे साथ रदनिका को भी दीप लेकर भेज दीजिये। चारुदत्त की आज्ञानुसार रदनिका प्रदीप लेकर मैत्रेय के साथ चल दी।

अभी इन लोगो ने गृह-द्वार खोला ही था कि भाग्यवश वसन्तसेना उस स्थान पर आगई और अपने अञ्चल से दीप निर्वाण करके वाटिका मे घुस आई। दीपक के ठण्डे होते ही मैत्रेय कहने लगे कि अच्छा हवा के कारण दीपक बाहर नहीं टिक सकता, इसलिए दियासलाई लो, मैं दूसरा दीपक लाता हूँ। यह कह कर मैत्रेय घर को दीपक लेने चले आये और रदनिका वहीं द्वार पर रह गई।

इधर विट शकार से कहने लगा कि महाराज कुछ केश-कलाप का सुवास आ रहा है। शकार बोला हाँ अवश्य मैं भी कानों से देखता हूँ और आँखों से सुनता हूँ, परन्तु देख, अबकी बार वसन्तसेना कहीं भगने न पावे। विट कहने लगा महाराज यह तो हमारे भाग्य से लौट आई अब कहाँ जा सकती है। इसे अपने रूप लावण्य का बडा अभिमान था। इस अभिमान में आकर ही इसने हम लोगों का अपमान किया। इसको हमने केश-पाश से आती हुई गन्ध से पकड लिया है। आज इस दासी पुत्री को बिना मृत्यु के घाट उतारे न मानूँगा। यह चाहे जो कुछ करे, चाहे किसी को पुकारे।

जब शकार वसन्तसेना की भ्रान्ति करके रदनिका को पकडने लगा, तो वह चिल्लाई मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा जो मुझे पकडते हो। अपरिचित शब्द सुनकर शकार सहम गया और विट से कहने लगा कि भाई मैं वसन्तसेना की बोली पहचानता हूँ, यह कोई और स्त्री है। विट ने कहा महाराज छोडियेगा नहीं, यह तो नाचने वाली है। रग मच की कला मे कुशल होने के कारण यह स्वरान्तर भी कर सकती है।

इतने ही में मैत्रेय जी दीपक लेकर चारुदत्त के घर से आये और कहने लगे—क्या किया जाय हवा के मारे दीपक ठहरता ही नहीं। रदनिका शकार के पादप्रहार से प्रताड़ित होकर रो रही थी। उसको समझाते हुए मैत्रेय कहने लगे कि भाई इसे क्यो मारते हो। यह हमारे यहाँ की परिचारका है। अब तो विट ने

मैत्रेय को पहचान कर शकार से कहने लगा यह तो महा-राज चारुदत्त के परम सखा मैत्रेय हैं। यह कहकर उसने अपने अविनय के लिए क्षमा माँगी और कहा कि महाराज! हम लोगों ने अज्ञानवश ही यह अपराध किया है। यहाँ पर हम किसी स्वाधीन यौवना स्त्री को ढूँढ़ रहे थे। वह तो जाने कहाँ चली गई परन्तु उसके धोखे में यह पकड़ ली गई।

शकार ने उनसे कहा कि तुम जाकर दरिद्र चारुदत्त से कह देना कि राज स्यालक संस्थानक ने आपसे कहला भेजा है कि वसन्तसेना नाम की गणिका को हम दोनों आदमी लिए जा रहे थे। वह बहुत से रत्नाभरण पहिने हुए तुम्हारे घर में घुस गई है। तुम उसको निकाल दो अन्यथा हमारा तुम्हारा दारुण वैर हो जायगा। यदि तुम ऐसा न करोगे तो तुम्हारी गर्दन पकड़ कर उमैठ दी जावेगी और सर तोड़ दिया जायगा। यह कह कर शकार चला गया। वसन्तसेना घर में पहिले ही आ गई थी परन्तु उसे चारुदत्त पहिचान न सके। उन्होंने जाना यह रदनिका है, इसलिए उन्होंने उसे आज्ञा दी कि इस दुपट्टे को चतुःशाला के अन्दर रख आओ। वसन्तसेना को भीतर जाने में संकोच हो रहा था। उसे ठिठकते देखकर चारुदत्त ने पूछा अरी रदनिके! जाती क्यों नहीं, यहाँ क्या कर रही है? वसन्तसेना बोल उठी रदनिका नहीं आपकी दासी मैं हूँ।

इतने ही में दीपक लिये हुए रदनिका और मैत्रेय वहाँ आ गये और उन्होंने कहा कि महाराज जिसके लिए आप इतने

लालायित हो रहे थे वह अनायास ही आपके द्वार पर उपस्थित है। उसे देखकर चारुदत्त कहने लगे वसन्तसेना! हमने बिना जाने ही तुम्हें दुपट्टा लेकर चतु:शाला मे जाने की आज्ञा दी, इसलिए हमारा अपराध क्षमा करो। वसन्तसेना ने हँसकर कहा महाराज मैं भी आपकी आज्ञा प्राप्त किये विना घर में घुस आई हूँ, इसलिए आप भी मुझे क्षमा करें। इसके अतिरिक्त मुझे आपको एक और भी कष्ट देना है कि इन आभूषणों के लोभ में पड कर आज गुण्डो ने मेरा पीछा किया था, जिससे बड़ी कठिनाई से बची हूँ। इसलिए कृपा करके इन रत्नाभरणों को अपने यहाँ रख लीजिये और मुझे मेरे घर पहुँचा दीजिये। चारुदत्त ने कहा अच्छा कोई बात नहीं, ऐसा ही करेंगे। यह कहकर उन्होंने मैत्रेय को आज्ञा दी कि वसन्तसेना को पहुँचा आओ। चारुदत्त की आज्ञानुसार वे वसन्तसेना को लेकर चल दिये।

(२)

वसन्तसेना अपने घर पर पहुँच गई। उसे अन्यमनस्क देखकर उसकी परिचारिका ने पूछा कि आज आप इस प्रकार खिन्न क्यों हो रही हैं। क्या किसी वणिक कुमार से आपका स्नेह हो गया है या किसी विद्या विशेष रमणीय ब्राह्मण कुमार से। वसन्तसेना कहने लगी कि तू उन्मत्त तो नहीं हो गई है। अरी वणिक कुमार से कौन प्रेम करेगा। उसे तो अपने व्यापार से ही छुट्टी नहीं मिलती। आये दिन तो वह विदेश में पड़ा रहता है, उससे प्रेम करना न करना दोनों बराबर हैं। क्या तू उस दिन

कामदेव उत्सव में नहीं गई थी और क्या तूने वहाँ सार्थवाह वंशावतंश महाराज चारुदत्त को नहीं देखा था, उनको ही मैंने अपना हृदय दे रक्खा है। यद्यपि लक्ष्मी उनसे रूठ गई है। तथापि मैंने इसकी कुछ चिन्ता न करके उन्हीं को अपना प्रेम-पात्र बनाया है। जिससे मुझे कोई धन लूटने वाली गणिका कह कर कलंकित न करे।

परिचारिका और वसन्तसेना मे इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि वहाँ पर संवाहक नाम का अपरिचित व्यक्ति आया और उसने कहा—मैं आपकी शरण हूँ मेरी रक्षा कीजिये। वसन्तसेना ने परिचारिका के द्वारा उसका परिचय पूछा तो वह कहने लगा कि मै पाटिलपुत्र का निवासी हूँ, और मेरा जन्म एक उच्च वणिक वंश मे हुआ है, परन्तु विधाता मुझसे इतना प्रतिकूल है कि जीविका के लिए विवश होकर मुझे नीच वृति का आश्रय लेना पड़ा है। मैंने लोगो से सुना था कि उज्जैनी बड़ी सुन्दर नगरी है, अतः इसके देखने के लिए चला आया। यहाँ पर आते-आते मुझे सार्थवाह पुत्र चारुदत्त का आश्रय मिल गया। उनकी सेवा मे रहकर मैं अपने घरबार को भूल गया, परन्तु इस समय उनसे भी भाग्य रूठ रहा है। मैंने भी अपने मन में विचारा ऐसे स्वामी की सेवा छोड़कर अन्य किसका आश्रय ग्रहण करूँ, इसलिए अन्त में मुझे हारकर द्यूत-वृत्ति का आश्रय लेना पड़ा। कुछ दिन हुए मैं दस हेम मुद्रा हार गया था, इसलिए लोग मेरे पीछे लगे रहे। उन्ही के भय से आपके

घर में विना आज्ञा लिये घुस आया। यदि महाराज चारुदत्त को मेरी दयनीय दशा का पता लग जाय, तो वे अवश्य मेरी सहायता करे। वसन्तसेना ने उसे धन देकर मुक्त कराया और वह धन्यवाद देकर चला गया।

अभी वह थोडी दूर भी न जाने पाया था कि उसके ऊपर एक विशाल हाथी झपटा। यह राजा का हाथी था और आज उन्मत्त होने के कारण नगर मे प्रलयकाण्ड उपस्थित कर रहा था। सम्वाहक को मृत्यु-मुख मे जाते देखकर चंट उस हाथी की ओर वढा और उसकी सूँड पर ऐसा प्रवल मुष्ट प्रहार किया कि हाथी हट गया और सम्वाहक अपनी प्राण-रक्षा करने में समर्थ हो सका। उसके लोकोत्तर वीरत्व पर मुग्ध होकर चारुदत्त ने उसे अपने सेवक द्वारा दुपट्टा उपहार मे दिलाया, क्योंकि उनके शरीर पर अन्य कोई आभूषण नही था।

(३)

एक दिन चारुदत्त और मैत्रेय वैठे-वैठे सांगीत के विषय मे वार्तालाप कर रहे थे। धीरे-धीरे वीणा का प्रसङ्ग छिडा। चारुदत्त कहने लगे कि वीणा क्या है समुद्र से निकला हुआ रत्न है। इस प्रकार कभी वीणा और कभी सांगीत के विषय में वहुत देर तक चर्चा होती रही, जिससे तङ्ग आकर मैत्रेय कहने लगे कि देखो, सडक पर कुत्ता भी नही बोलता। मुझे इतनी निद्रा आ रही है कि वीणा का प्रसङ्ग मुझे विलकुल रूखा मालूम होता है। देखो, चन्द्रमा आकाश में चढ आया इसलिए अव घर

चलना चाहिये।

मैत्रेय के प्रबल आग्रह से चारुदत्त वहाँ से चल पड़े और अपने घर पर आकर उन्होंने वर्धमानक को पुकारा और उससे कहा कि पैर धोने के लिए घर से पानी ले आओ। इसी प्रकार पैर धोकर वह अपनी शैय्या पर लेट गये और मैत्रेय से बोले कि तुम निद्रा लो मैं भी सोता हूँ।

इन्हें सोये देर भी नहीं हुई थी कि चेटी मैत्रेय को जगाकर कहने लगी कि आज अष्टमी है, वसन्तसेना के रत्नाभूषणों को रख लीजिये। चारुदत्त ने कहा भाई इन्हें रख लो क्योंकि पराये धन को अपने अन्तरगृह में कभी नहीं रखना चाहिये। चारुदत्त की आज्ञानुसार मैत्रेय ने उन्हें अपने पास रख लिया और चेटी फिर चली गई फिर चारुदत्त और मैत्रेय सो गये।

इसी समय सज्जलक नाम का तस्कर वहाँ पर चोरी करने के लिए आया और अपने इष्टदेव का स्मरण करके उसने छत में सेंध लगा दी। पहिले बहुत देर तक सोचता रहा कि यह नीच कर्म है क्योंकि इससे विश्वस्त की प्रवचना होती है, परन्तु इसमें गुण इतना ही है कि जीविका के लिए किसी की अनुनय विनय नहीं करनी पड़ती। इसके अतिरिक्त यह पुरानी प्रथा भी है। इसका अनुसरण भरद्वाज के पौत्र अश्वत्थामा ने भी किया था। सेंध लगाने में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि जिस स्थान से पानी मरता हो या जहाँ लोनी लग गई हो या जहाँ कोई और सन्देह हो वहाँ बड़ी सफलता के साथ कार्य हो

जायगा परन्तु खटपट नही होनी चाहिये। इस प्रकार सोच-विचार कर सज्जलक सैंध लाकर घर मे आ घुसा। उस समय दीपक जल रहा था। मैत्रेय और चारुदत्त पडे सो रहे थे। पर उसने उनकी परीक्षा की कि यह जगते तो नहीं रहे हैं। जब उसे विश्वास हो गया कि वे गहरी निद्रा मे पड़े सो रहे हैं। तो उसने दीपक को बुझाकर अपना कार्य आरम्भ किया। इतने ही मे मैत्रेय बड़बडाने लगे कि चारुदत्त यह अपना आभूषणों का डिब्बा लो और जब वह निद्रावश न बोले तब तो मैत्रेय ने शपथ दिलाई। सज्जलक तो वहाँ खड़ा ही था उसने चुपके से आभरणों का डिब्बा ले लिया और निशावसान का समय जान-कर अपना मार्ग लिया। यद्यपि वह चोरी कर लाया था, पर उसका चित्त शान्त न था और वह बार बार अपने निन्दित कार्य को कोसता रहता था।

प्रभात होते ही चेटी ने देखा कि छत में बडी भारी सैंध लगी है। तब तो वह दौड़ती हुई मैत्रेय के पास आई और कहने लगी कि महाराज आप पड़े सोते हैं यहाँ लुट गया, देखो कितनी बडी सैंध लगी है, चोर सब कुछ उठा ले गया होगा। चारुदत्त को जब चोर प्रवेश का पता चला तो उन्हें इस विचार से सन्तोष हुआ कि बसन्तसेना के आभूषणों का डिब्बा उन्होने मैत्रेय को दे दिया, परन्तु मैत्रेय ने कहा कि मैंने आपको रात को लौटा दिया था। तब तो चारों तरफ महा विषाद हुआ क्योंकि वह आभरण बसन्तसेना के थे। इसके अतिरिक्त उन्हें लोकावाद का भी भय

था कि ऐसी दशा मे लोग उनकी सचाई पर विश्वास न करके उन्ही को लाञ्छित करेगे और कहेंगे कि चारुदत्त ही ने वसन्तसेना के आभरण रख लिए होगे।

चारुदत्त इन्ही विचारो मे मग्न हो रहे थे कि उनकी स्त्री ने चेटी को बुला कर सारा हाल पूछा। तब तो उसे मालूम हुआ कि वसन्तसेना के आभूषणो को चोर उठा ले गया, परन्तु यह जान कर बड़ा सन्तोष हुआ कि चारुदत्त अथवा मैत्रेय के कोई चोट नही आई। इसके अनन्तर उन्होने मैत्रेय को बुलाया और उसके हाथ अपनी बहुमूल्य मुक्तावली अपने स्वामी को उऋण करने के लिये वसन्तसेना के पास भिजवा दी। जब चारुदत्त को यह मालूम हुआ कि ब्राह्मणी की कृपा से उन्हें ऋण मोक्ष होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तब तो उन्हे बड़ा आनन्द हुआ और साथ ही साथ अपूर्व सन्तोष हुआ।

(४)

वसन्तसेना अपने घर पर बैठी हुई चेटी के साथ चारुदत्त का चित्र देख रही थी. इतने ही मे सज्जलक ने जाकर अपनी प्रणयिनी मदनिका को पुकारा। चिर परिचित कंठ स्वर को पहिचान कर वह जान गई कि यह तो मेरा प्रेमी सज्जलक बोल रहा है. इसलिये वह तुरन्त वहाँ पर आई। परन्तु उसके मुख पर खेद. शंका और भय की मुद्रा अंकित देख कर उससे पूछने लगी कि आज तुम्हें क्या हो गया है। इतने शंकित क्यो दिखलाई पड़ते हो। सज्जलक बोला मुझे कुछ कहना है। वह यह है कि तुम्हारी

मुक्ति के लिये वसन्तसेना क्या लेगी। चेटी बोली वे तो मुझे योही छोडने को तैयार हैं। सज्जलक ने कहा यह हेम आभरण उन्हें देकर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करो। जब मदनिका ने उन्हे देखा तब तो वह चिरपरिचित आभूषणो को पहिचान गई और सज्जलक से कहने लगी तुमने बडा अनर्थ किया है। इन आभूषणों को तुमने कहाँ से पाया ? यह तो हमारी स्वामिनी के हैं। तुमने किसे धोखा दिया है ? जब सज्जलक से उसे मालूम हुआ कि चारुदत्त के घर में चोरी करके वह आभूषण प्राप्त किये गये, तब तो उसे बडी चिन्ता हुई और वह सज्जलक से पूछने लगी कि भला इनके प्राप्त करने मे तुमने कोई अनर्थ तो नहीं कर डाला। चारुदत्त को शारीरिक क्षति तो नहीं पहुँचाई। चारुदत्त के विषय में प्रश्न सुन कर सज्जलक को सन्देह होने लगा कि मदनिका उनसे गुप्त-प्रेम तो नही रखती है। इतने ही में मदनिका ने उससे कहा कि आप थोडी देर तक कामदेव भवन में विश्राम करें।

इतने ही में मैत्रेय जी वहाँ आये और बसन्तसेना से पूछने लगे कि आपके आभूषण कितने मूल्य के थे। आज चारुदत्त उन्हें द्यूत में हार गये इसलिये उनके बदले मे यह मौक्तिकदाम आपकी सेवा मे भेजा है, इसे आप स्वीकार करें। वसन्तसेना ने कहा अच्छा इन्हे आप लेते जाइये। मै स्वय आकर उनसे मिलूँगी। मैत्रेय मौक्तिकदाम लेकर चले गये।

मैत्रेय के जाते ही मदनिका ने बसन्तसेना को सूचित किया

कि महाराज चारुदत्त के यहाँ से कोई मनुष्य आभरण मँजूषा लेकर आया है और कहता है महाराज ने आपकी सेवा में आभरण भेजे हैं, इन्हें आप स्वीकार करें। वसन्तसेना ने कहा कि इन्हें आप उन्हीं को दे आवें। मै जानती हूँ कि यह आभरण कैसे यहाँ आये हैं। यह कह कर उसने मदनिका को अपने पास बुलाया और उसे अपने समस्त रत्नाभरण पहिना दिये और उसे पालकी मे बिठा कर सज्जलक के साथ भेज दिया।

कल्याण सौगन्धिक

एक बार गन्धमादन पर्वत के शिखर से प्रबल प्रभञ्जन के वेग से टूट कर एक पारिजात वहाँ पर आ गिरा जहाँ पाञ्चालराज-तनया भीमसेन के साथ बैठी हुई कुछ वार्तालाप कर रही थी। उसके परिमलामोद पर मुग्ध होकर कृष्णा ने भीमसेन से कहा कि प्राणनाथ! यदि ऐसे ही कुछ और भी फूल मिल जायँ तो आज इन्हीं से अपना शृङ्गार करूँ। कृपया इसी प्रकार के और फूल ला दीजिये।

अपनी प्राणवल्लभा का पुष्पों के लिये प्रबल आग्रह देखकर महाबाहु भीमसेन ने कहा—अच्छा कृष्णे! मुझे थोड़ी देर का समय दो मैं अभी ऐसे फूलों का समूह तुम्हारे लिये लाता हूँ। यह कहकर गदा-पाणि भीमसेन फूल लेने के लिये चल पड़े। भीम चल तो पड़े, परन्तु उन्हें इस बात का पता न था कि ऐसा देव-दुर्लभ फूल पृथ्वी पर कहाँ से आया? थोड़ी देर तक वे संकल्प-विकल्प में पड़े रहे, परन्तु अन्त में वे उसी दिशा में

चल पडे जिधर से पवन को सुवासित करता हुआ पारिजात वहाँ पर आकर गिरा था।

भीमसेन को इस प्रकार पारिजात संचय के लिये दुराग्रह पूर्वक अनधिकार चेष्टा करते देखकर एक वृद्ध तपस्वी उन्हें इस दारुण अनुष्ठान से निवारण करने के लिये, उनके पीछे पीछे सकुटुम्ब दौडा। परन्तु जराजीर्ण तपस्वी पवनपुत्र को भला क्या पकड सकता था। अन्त में हताश होकर वह वहीं बैठ गया, और अपनी स्त्री से कहने लगा कि मेरे उभय पार्श्व भागो को अपने हाथों से भली भाँति दबाओ, क्योंकि तीव्र वेग से दौड़ने के कारण मेरा श्वॉस फूल रहा है। वृद्ध आदमियों को तो अपना प्राण धारण करना भी कठिन हो जाता है फिर भला उनसे किसी प्रकार के परिश्रम साध्य कार्य के सपादन किये जाने की आशा व्यर्थ है।

ब्राह्मणी कहने लगी "मुनिवर! यदि आपको वास्तव में अपना निजी कार्य करना कठिन प्रतीत होता है, तो फिर आप दूसरों के कार्य करने में क्यों व्यस्त हो जाते हैं।" तपस्वी कहने लगा कि धार्मिक सिद्धान्तों का रहस्य तुम क्या जानो, देखो ये पाण्डु के पुत्र कितने दया के पात्र हैं। दुर्योधन के कपट जाल में फँसकर यह सुरेन्द्र-विक्रम पाण्डु-पुत्र अपने गौरव, यश और शोभा को मिट्टी में मिलाकर आज वल्कलधारी तपस्वी के समान वनों में भटक रहे हैं। ब्राह्मणी कहने लगी—ऐसी दशा में तो ये अवश्य दया के पात्र हैं, परन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि

इनके कष्टों को जानते हुए द्रौपदी ने इन्हें ऐसे कठिन कार्य मे क्यों लगाया है।

तपस्वी ने कहा यह न पूछो। स्त्रियाँ कमल-कोमल-कान्त कलेवरा होते हुए भी पाषाण हृदया होती हैं। इसका प्रमाण है महारानी कैकेयी, जिन्होंने अपने लोकोत्तर गुण सम्पन्न पुत्र रामचन्द्र को वन मे, और अपने पति को अन्तक के गृह मे भेजा, परन्तु वाह रे उनका पाषाण हृदय! उस पर चोट न आई। इस प्रकार वार्तालाप करते करते वृद्ध ब्राह्मण और उनकी स्त्री को इस बात पर दृढ़ विश्वास हुआ कि वह भीम को न लौटा सकेंगे क्योंकि वह भयंकर शंखनाद से लोकत्रय को भयभीत करता हुआ, गदाघात से पर्वतों को चूर करता हुआ, वृक्षों का समूलोन्मूलन करता हुआ एव अपने तीव्र वेग से अपने पिता पवन को भी लज्जित करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता था, इसलिये ये वृद्ध ब्राह्मण दम्पत्ति एक निकटस्थ अग्निहोत्रशाला में चले गये।

इधर भीमसेन का घनघोर सिंहनाद सुनकर सारे वन जीव घबड़ा उठे। उन्होंने समझ लिया कि मानो कल्पान्त आ गया हो। इस प्रकार अकाण्ड ताण्डव के व्याज से भीम अन्त मे अपने पिता की गति की विडम्बना करते हुये गन्धमादन पर्वत पर जा पहुँचे। वायु-पुत्र ने अपने मन मे विचारा कि अब तो मैं निश्चित स्थान पर आ गया हूँ, इसलिये पारिजात विटप के उद्गम स्थान का अन्वेषण भी करलूँ, इस विचार से भीम

वहाँ से चल पड़े।

यह वन बडा भयकर था। इसकी गुफाओं से भयकराकार सिह निकल रहे थे, लब्ध निद्रा-सुख अजगरो ने कुचले जाने के कारण क्रोध में आकर अपनी दाढ़ो से उनके पैरो को दवा रक्खा था। जहाँ वन के एक प्रान्त मे भीपणता का साम्राज्य था वहाँ दूसरी ओर आमोद-प्रमोद के सारे उपकरण उपलब्ध थे। कहीं दिव्य देवांगनाओं का नृत्य हो रहा था। कही कोई सुर-स्त्री अपनी सहयोगिनी के लिये सरोज हार वना रही थी। कही कोई देवदारा आसवोन्मत होकर मद घूर्णित कोकनद-छद की शोभा की विडम्बना करने वाले नेत्रो से प्रेमी की ओर भ्रू विक्षेप कर रही थी। कही कोई रमणी-रत्न रत्नानुविद्धि कॉचन पात्र मे वारुणी डाल कर पहले तो स्वय पीती और फिर अपने अधर माधुरी से मिश्रित अवशिष्ट सुरा को साग्रह अपने प्रणयी को पिलाती थी और वह भी उसका रसास्वादन करके अपने जीवन को कृतार्थ समझता था। कही कोई सिद्ध दम्पत्ति हिंडोले पर झूलते थे। जिस समय वे हिंडोले की झोक से भयकातरा प्रणयनी की अयाचित प्रेमाश्लेपण प्राप्त करते थे तो उनके आनन्द का कुछ ठिकाना नही रहता था।

इस प्रकार लोचनाभिराम दृश्यों को देखते हुए भीमसेन एक स्वच्छ सरोवर पर जा पहुँचे जो प्रकृति देवी का दर्पण था और जिसमे वह अपना सौन्दर्य अवलोकन किया करती थी। बहुत से कृपाणपाणि राक्षस वृन्द इस सरोवर की रक्षा के

लिये नियुक्त थे। इसके कमल कलापों से मकरन्द वुन्दों को लेकर उड़ने वाले मलिन्द वृन्द चारों ओर सरोवर पर मड़राते हुये दिन मे भी इन्दीवरों की भ्रान्ति उत्पन्न किया करते थे।

भीम को उस ओर आते हुये देख एक राक्षस-रक्षक का क्रोध कृशानु प्रज्वलित हो उठा और उसने अपना खड्ग सँभाल कर भीम को झिड़कते हुए कहा कि अरे मानवापसद! तू किस वल के गर्व से राक्षसवृन्दो के परिघ पीवर वाहुदंडो से परिरक्षित यक्षेश्वर के सरोवर के निकट आने का साहस करता है। क्या तू अभी यमराज के दर्शन करना चाहता है? सावधान! यदि एक पैर भी आगे वढ़ाया तो इसी तीक्ष्ण करवाल से तेरा सिर काट कर फेंक दूँगा। यह तो मैं जानता हूँ तू वड़ा धृष्ट एवं प्रगल्भ मनुष्य दिखाई देता है जो राक्षसो का भय न मानकर उधर वरावर वढ़ता ही आता है।

भीमसेन हँसकर वोले कि हिडम्ब नामी एक दुर्दान्त राक्षस को मारकर उसकी भगिनी हिडम्बिनी के साथ मैंने विवाह किया, वकासुर का वध करके एक चक्रा नगरी का भय दूर किया, और राक्षसो के नेता किमीर को मारकर राक्षस जाति के अभिमान पर ठेस मारी। अव और कौनसा राक्षस रह गया है जो अपने जीवन से निराश होकर शीघ्र ही यमराज के दर्शन के लिये उत्सुक हो रहा है।

भीम की ऐसी प्रगल्भ प्रचारणा सुनकर आगे वढ़कर राक्षस ने उनके ऊपर अपनी चंड करवाल का प्रहार किया, परन्तु वह

भीमसेन की गदा से टकरा कर खड खंड हो गई। खड्ग के टूटते ही राक्षस भागा और उसे युद्ध विमुख देखकर अन्य सरोवर रक्षक भी भाग खड़े हुए।

इसी समय आकाश मार्ग से विमानारूढ विद्याधर दम्पत्ति कल्याण और गुणमजरी आती हुई दिखाई पड़ीं। वायु वेग से चलने के कारण विमान मे वैठी हुई गुणमंजरी हिंडोले झूलने का सुख अनुभव कर रही थी। यद्यपि कल्याण उसे अपने दीर्घ वाहुओ के वल से सँभालने की चेष्टा करता था, परन्तु वायु के प्रवल वेग से वह सँभाले नहीं सँभलती थी। यह कोई सामान्य पवन न था। यह सप्तर्षि मण्डल के नक्षत्रों के वीच मे वहने वाला परावह नामी पवन था, और यह विद्याधर इन्द्र की आज्ञा से भीम और हनुमान का परस्पर परिचय करने आ रहा है।

आकाश से पृथ्वी का जैसा दृश्य दिखाई देता था उससे गुणमजरी को इस वात का पता नहीं चलता था कि वह किस देश में जा रही है। ज्यों-ज्यो विमान नीचे की ओर आता गया त्यों-त्यो भूभाग स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे। क्रमश निषिध, हेमकूट, हिमालय, गन्धमादन और कैलाश पर्वत दृष्टिगोचर हुए। कुछ ही आगे वढकर अलकापुरी के गगनचुम्बी स्फटिक धवल सौधपक्ति दिखाई पडने लगी। नगेन्द्र के अंक मे अलका सुन्दरी की शोभा और ही विचित्र हो रही थी। इसके वाह्योद्यान स्थित शंकर के ललाट चन्द्र की ज्योतित्स्ना से सारे ग्रह और भी धवलित हो रहे थे। अलकापुरी और स्वर्ग में नाम मात्र का

अन्तर है। कोई वास्तविक अन्तर नहीं।

इतने ही में विमान गन्धमादन पर्वत पर आकर उतरा। कल्याण ने गुणमंजरी से कहा कि प्रिये! बहुत देर से विमान में बैठने के कारण हम लोग थक गये है। इसलिये आओ थोड़ी देर तक यहीं रंभा निकुंज मे स्फटिक शिलातल्प पर बैठ कर मार्ग श्रम दूर करलें, और यह भी देख लें कि भीम और हनुमान परस्पर कैसा व्यवहार करते हैं।

विद्याधर दम्पत्ति कदली कुंज मे बैठ गये। इधर भीमसेन पार्वत्य प्रदेश की शोभा को देखते हुए द्रौपदी के हेतु फूल लाने के लिये गन्धमादन के शिखर पर चढ़े, जहाँ पर हनुमान जी का निवास था। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि किसी वृक्ष के पके फल को पक्षियो ने नहीं खाया है। इससे उन्होंने अनुमान कर लिया कि यहाँ अवश्य ही किसी तेजस्वी पुरुष का आवास होगा। परन्तु थोड़ी ही देर मे भीम के क्षात्र तेज ने उन्हें उस महापुरुष के आतंक की अवहेलना करने को विवश किया और उन्होंने यह निश्चय किया कि जैसे बन पड़ेगा वैसे आज इसका दर्प चूर्ण करके ही जाऊँगा। इस विचार से भीम ने तीव्र स्वर से कहा कि यदि यहाँ पर कोई व्यक्ति अपने प्रचंड भुजदण्ड के बल का अभिमान रखता हो या जिसे क्षीण आयु को यमपुरी जाने की अभिलाषा हो वह इसी समय मेरे सामने आवे।

भीमसेन की दर्पोक्ति सुनकर हनुमान जी को क्रोध आ गया. क्योंकि सिंह घनगर्जन को सुनकर ही नाद करता है. गोमायु

के भूँकने का उत्तर नहीं देता। उन्होंने कडक कर कहा—क्या तूने हनुमान का नाम नहीं सुना, जिन्होंने सागर को गोस्पद के समान लाँघ कर उस लंका को दग्ध कर डाला था, जिसकी रक्षा के लिये ऐसे ऐसे राक्षस नियुक्त थे, जिनके विशाल वक्षस्थलों पर कुलिस कुण्ठित हो गया था और दिग्गजों के दन्त मूली के समान टूट गये थे। तुम मनुष्य होकर हम ऐसे वानरो से प्रतिस्पर्धा करने की इच्छा क्या करते हो मानो स्वयं यमराज के अतिथि वनने को उत्सुक हो रहे हो।

भीमसेन ने कहा कि वानरो से युद्ध करना तो दूर रहा उनसे वाग्वाद करने में भी मुझे लज्जा आती है। भीम के सहस्र-गज-वल को लोग क्या धिक्कारेंगे। अर्जुन की जेष्ठ वन्धुता पर लोग क्या कहेंगे। यदि तुमसे लडकर मुझे लोकावाद का डर न होता, तो मैं तुम्हें पकड कर अभी गन्धमादन की चोटी पर से नीचे डाल देता।

हनुमान ने कहा अच्छा मै तो वृद्ध वानर हूँ। मेरी आज्ञा के विना तुम आगे नहीं वढ सकते। तुम्हे अपने वल का दर्प है, तो मुझे मार्ग से हटा कर जाओ। भीमसेन ने वड़े अभिमान से हनुमान जी का लाँगूल पकड़ कर उन्हे पटकने की चेष्टा की, परन्तु उसके छूते ही उन्हें रोमाञ्च हो आया और वह एक अपूर्व सुख स्पर्श का अनुभव करने लगे। परन्तु साथ ही भीम को कुछ कम भय भी न हुआ। वह अपने मन ही मन सोचने लगे कि

आज जीवन संग्राम का अन्तिम दिवस है क्योंकि जिस महा-सत्व का लाँगूल उठाने की भी मुझे सामर्थ्य नहीं है उससे युद्ध करना दुस्साहस मात्र है। वली से युद्ध करना अनुचित नहीं परन्तु यदि कोई अपने बलावलेप में आकर किसी वारण के विरुद्ध युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जावे तो समझ लो वह अपनी मृत्यु को बुला रहा है।

इन भावों को भीमसेन ने अपने हृदय मे ऐसा दबाया कि उनके तेजस्वी ललाट पर भय की रेखा भी न अंकित हो पाई और फिर उन्होंने कडक कर हनुमान जी से कहा यदि आज महाकपि हनुमान जी अपने जातीय गौरव की रक्षा के लिये गुप्त रूप से तुम्हारी सहायता न करे, तो समझो कि तुम्हारा अन्त आ गया। हनुमान जी को उसी समय क्रोध आगया और भीम की ओर झपट पड़े। भीम तो तैयार थे ही फिर क्या था ताल ठोक कर मल्ल युद्ध और मुष्टिका युद्ध होने लगा।

भीम और हनुमान का मल्ल युद्ध देख कर कल्याण विद्याधर कदली वन से निकल आया और उनके बीच में खड़ा होकर कहने लगा कि तुम दोनो ही पवन के पुत्र हो और परस्पर अपरिचित होने के कारण ही इस प्रकार लड़ रहे हो। गन्धर्व के वचन सुनकर लज्जा विनम्र मुख भीमसेन एक ओर खड़े हो गये। हनुमान जी ने अपने प्राशु बाहुओं से भीम को गाढालिंगन किया और उन्हें अपने पास बैठाया। फिर उन्होंने कल्याण से उसका परिचय पूछा। उत्तर में उसने निवेदन किया कि मैं कल्याण नाम का गन्धर्व हूँ और यह मेरी प्रियतमा गुणमंजरी

है। यहाँ पर मैं इन्द्र के आदेश से आपसे निवेदन करने आया था कि भीमसेन आपके कनिष्ठ भ्राता हैं। यह सुनकर भीमसेन ने कल्याण से पूछा "क्या तुम अर्जुन को जानते हो ?" कल्याण ने उत्तर दिया कि भला ऐसे प्रकृत वीर को कौन नहीं जानेगा ? उन्होंने निवात-कवच जैसे इन्द्र के भयंकर वैरियो का विध्वस करके देवकुल की आपदा को टाल दिया और इस समय उन्होंने सब से सराहनीय कार्य यह किया कि उर्वसी की प्रणय भिक्षा को ठुकरा कर अपनी अपूर्व सयमनिष्ठता का परिचय दिया। आपका और हनुमान जी का ऐसा ही जोड़ा है जैसा राम लक्ष्मण जी का था।

राम-लक्ष्मण का नाम सुनकर हनुमान जी भक्ति सागर के तरल तरगों मे निमग्न होने लगे। भीमसेन ने उनसे रामचरित सुनाने की प्रार्थना की। हनुमान जी ने भगवान् के वन गमन से लगाकर पुन सिंहासनारोहण तक की कथा कह सुनाई। विद्याधर हनुमान जी से आज्ञा लेकर अमरावती चले गये। हनुमान जी ने भीमसेन से कहा कि युद्ध मे निश्चय कौरवो का वध करके हम पांडवो का हित साधन करेंगे। भीम ने कहा कि यदि यह काम आप करेंगे तो फिर हम लोग क्या करेगे। आपकी कृपा से हमारी अभिलाषा पूर्ण होने मे कोई वाधा नहीं रही। आपके शरीर स्पर्श से हमने अपने गात्रों को पवित्र कर लिया है, अब हमें कोई चिन्ता नहीं। हनुमान जी की आज्ञानुसार भीमसेन वहुत से फूल लेकर लौट आये।

दामक प्रहसन

अंगाधिराज महाराज कर्ण रावण के समान अपने प्रताप को बढ़ाने के लिये जब अखिल राजान्यवर्ग को जीत कर भी सन्तुष्ट न हुए, तब वह अस्त्र विद्या के पारॉगत पंडित होने के लिये परशुराम के आश्रम को गये। उस समय से उनके अनुगामी दामक पर घोर आपत्ति आई, क्योंकि यह अंगाधीश का अन्तरंग मित्र था। इस समय तक उसे सारे राज-सुख प्राप्त थे। अन्त.पुर की बावड़ियो मे महाराज के साथ ही वह स्नान करता था। राजप्रासाद में सुन्दर शय्या पर सोता था। पूर्वाह्न में दिव्य भोजन और अपराह्न मे सुन्दर स्वादिष्ट पकान्न एवं सुगन्धित ताम्बूल का भोग लगाता था। दिव्य वस्त्र धारण करता था, और इस पर भी राजकन्याओ द्वारा सत्कार, इत्यादि एक से एक बढ़ कर सुख उसे प्राप्त थे।

इन सब बातों के होते हुए भी दुर्भाग्य वश उसे भोजन पचता न था। प्रसून शय्या पर भी उसे निद्रा नहीं आती थी।

उसने महाराज से नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि मैं वन को जाना नहीं चाहता, क्योंकि वहाँ पशु-पक्षियों को देखकर मेरी जठर ज्वाला और भी तीव्र हो जाती है। कारण यह है कि मैं इन वन जन्तुओं को अपना आहार समझता हूँ। मांसाहारी होने के कारण मैं इन पशुओं को बडी सतृष्ण दृष्टि से देखता हूँ। इस समय शीर्ष-वेदना भी मुझे व्यथित कर रही है। कास कुसुम रेणु के नेत्रो में पडने के कारण से अश्रुधारा बह रही है। मध्य मार्ग में दासी पुत्र भ्रमरो ने मुझे और भी पीड़ित कर रक्खा है। मेरी बुद्धि इस समय बिल्कुल उल्टी हो रही है। जिस प्रकार दर्पण मे दाहिने हाथ की वस्तु बायें हाथ को दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार मुझे सब उलटा ही दीख पड़ता है। मैं अपने नेत्रों से सूँघता हूँ, और नासिका से देखता हूँ। वास्तव मे उन अनुचरो का बड़ा ही दुर्भाग्य है जिन्हें विवेकशून्य स्वामी की सेवा करने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है।

इतने ही में दामक की दृष्टि एक कुत्ते पर पड़ी जो किसी तपस्वी के वल्कल वसन लिये हुए भागा जा रहा था। उसे देख कर उसने एक डाट बताई और कहा कि अरे दुष्ट! तू कहाँ जाता है? अभी तेरे दाँत तोड़ता हूँ।

दामक कुछ दूर तक कुत्ते के पीछे भागता चला गया परन्तु उसे पकड़ न सका और इसलिये उसे दंड देने में भी असमर्थ रहा। अब उसकी दृष्टि तपोवन पर पड़ी और उसने कहा कि यह तो सभी प्रकार के मनुष्यों के रहने के लिये उपयुक्त स्थान

है। यहाँ पर निवास करने वाले तपस्वी परम सन्तोषमय जीवन व्यतीत करते हैं। मृगचर्म ही इनके उत्तरीय वस्त्र है। इनके शीश पर जटायें हैं। ये कृष्णाजिन की मेखलायें धारण किये हुए हैं। आश्रम वासी तपस्वी स्वच्छन्दता पूर्वक वन मे कन्द-मूल, फल, प्रसून समिधा और कुश इत्यादिक ला रहे हैं। कुछ तपस्वी सरोवर के स्वच्छ सलिल मे स्नान कर रहे हैं। होमाग्नि प्रदीप्त हो रही है। आश्रम वृक्षो के ऊपर होकर होम धूम निकल रहा है। बड़े-बड़े महर्षि अग्निहोत्र कर चुके हैं। वेद-वेदांग के पारांगत पंडित अग्नि के चारो ओर बैठे हैं। ये लोग कृष्ण मृग चर्म के उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए है। इनके सिर पर से पिशङ्गी जटाये लटक रही हैं। स्वर्णाभ वल्कल वस्त्रो से और मौक्तिक छटा सम्पन्न शुभ्र यज्ञोपवीत से एवं मणि माणिक्य मयी मालाओ से ये महर्षि तपस्वी होते हुए भी कल्प वृक्ष मालूम होते हैं। गालव आदिक ब्रह्मचारी अपना पाठ पढ़ते जाते हैं और होमाग्नि को प्रज्वलित रखने के लिये उस पर समिधाये भी डालते जाते हैं। तपस्वियो की आवश्यकता पूर्ति की सारी सामग्री यहाँ पर प्रस्तुत रहती है। आश्रम मृग थोड़ा सा नीवार खाकर सन्तुष्ट रहते हैं। तपस्वि-कन्यकाये आलवालों मे स्वयं जल दे रही हैं।

दामक तपोवन की शोभा देखने मे लगा था कि उसे परशु-राम और कर्ण दिखाई पड़े। कर्ण ने उन्हे प्रणाम करके निवेदन किया कि महाराज मैं ब्राह्मण हूँ और आपसे अस्त्र

विद्या सीखने आया हूँ। परुशुराम ने कहा अच्छा यदि तुम ब्राह्मण हो, तो मुझे विद्या दान देने मे कोई सकोच नहीं, परन्तु स्मरण रखना कि मैं क्षत्री को विद्या नहीं पढ़ाता।

एक दिन सयोग वश परशुराम कर्ण को साथ लेकर कन्द-मूल-फल, समिधा, कुश और फूल आदिक सामान लेने वन को गये और वहाँ देर तक घूमने के कारण वहुत थक गये। संयोग वश उन्हे निद्रा ने आ घेरा और इसलिये वह कर्ण की जंघा पर शिर रख कर वहीं सो गये।

परशुराम की जटाओ मे वज्र मुख नाम का एक कीडा रहता था। जटा से निकल कर उसने कर्ण का जंघ-वेधन किया, जिससे सद्योष्ण शोणित की धारा वह निकली। परशुराम की निद्रा भग हो गई। रक्त प्रवाह को देख कर उन्होने जान लिया कि अवश्य ही इसको वज्र कीट ने काट खाया है। साथ ही साथ उनका विचार इस वात की ओर भी गया कि यह वालक ब्राह्मण नहीं हो सकता, क्योंकि ब्राह्मण में इतनी नैसर्गिक सहिष्णुता नहीं होती कि वह अपना जघवेधन करा डाले और व्यथा के कारण उसके मुख पर विषाद की रेखा भी न अकित होने पावे? अवश्य ही यह कोई क्षत्रिय कुमार है क्योंकि इतनी स्वाभाविक सहिष्णुता क्षत्रियों में ही हो सकती है।

इन विचारों से प्रेरित होकर ताम्राक्ष परशुराम ने कर्ण से पूछा "अरे शिष्य! वता तेरी कौन जाति है? तू ब्राह्मण नहीं हो सकता। तू अस्त्र विद्या लोलुप क्षत्री है, और इसी लिये तूने

मुझे वंचित किया है। इसलिये मैं तुझे वर और शाप देता हूँ क्योंकि आचार्य का यह काम नहीं कि वह शिष्य को विद्या देकर उसका विनाश भी करे। मैं तुम्हें ये पाँच बाण देता हूँ। जब तक ये तुम्हारे पास रहेंगे, तब तक तुम त्रैलोक्य को जीतने मे समर्थ रहोगे, परन्तु जब ये बाण शत्रु के हाथ जा पड़ेंगे, तब इन्हीं से तुम्हारी मृत्यु होगी। महाभारत युद्ध मे कृष्ण के परामर्श से कुन्ती ने ये ही परशुराम प्रदत्त बाण कर्ण से माँग लिये थे और इन्हीं से अर्जुन ने संग्राम के समय निरस्त्र कर्ण का शीर्षोच्छेदन किया था।
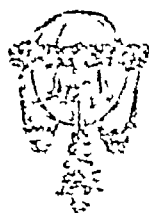
बालचरित

[प्रसंग—वृष्णि वंशावतंस वासुदेव का विवाह उग्रसेन की कन्या देवकी के साथ सानन्द समाप्त हो गया। जब वसुदेव देवकी की विदा करा कर अपने घर को चलने लगे, तो उनका भाई कंस भी अपनी भगिनी को पहुँचाने के लिये रथ पर बैठ कर साथ चला। अभी इन्हें प्रस्थान किये बहुत देर न होने पाई थी कि सहसा इन्होंने आकाशवाणी सुनी। उसका अर्थ यह था कि हे कंस! तुम स्वसा प्रेम से प्रेरित होकर जिस सहोदरा को पहुँचाने जा रहे हो, उसी का आठवाँ गर्भ तुम्हारा काल होगा।

आकाशवाणी सुन कर कंस को आश्चर्य हुआ। मृत्यु भय बड़ा भयंकर होता है और इसका निराकरण करने के लिये मनुष्य अनुचित अथवा उचित सभी प्रकार के उपायों का आश्रय ग्रहण करता है। कंस ने भी ऐसा ही किया। तुरन्त अपनी कृपाण खींच कर वह देवकी का वध करने के लिये सन्नद्ध हुआ। उसकी यह दारुण चेष्टा देख कर वसुदेव ने जान

लिया कि अब देवकी का कल्याण नहीं है। परन्तु फिर भी धैर्य धर कर वे कंस से कहने लगे कि हे वीर पुङ्गव ! आप ऐसे महानुभावों को अबला वध शोभा नहीं देता और विशेषत कनिष्ठा सहोदरा का निधन तो और भी निन्दनीय है। जिस मरण भय से आप इसके रक्त से अपने कर कमलों को रंजित करना चाहते हैं, मैं उसका यह उपाय आपको बतलाता हूँ, कि इससे जो पुत्र पैदा हो उसका आप वध कर डालिये। ऐसी दशा में आपके मरण भय का निराकरण हो सकेगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

यह सुन कर कंस कुछ शान्त हुआ। कालान्तर मे देवकी के गर्भ से सात पुत्र उत्पन्न हुए और कंस ने उन सब का विराध वध किया। अन्त में देवकी के गर्भ से भगवान कृष्ण का जन्म कंस के कारागार मे हुआ]

(१)

भगवान कृष्णचन्द्र के जन्म होने का समाचार पाकर देवर्षि नारद मथुरा में पधारे और कंस के उस कारागार मे जा पहुँचे जहाँ पर निधनपुत्रा देवकी और वसुदेव अपना दु'खमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। भगवान के दर्शनों से कृतार्थ होकर तथा उनकी वन्दना करके देवर्षि नारद तो ब्रह्मलोक को चले गये।

देवकी सद्य प्रसूत कृष्ण को देख रही थी, और जन्म समय के महानिमित्तों को देख कर अपने मन में अनुमान कर

रही थी कि यह बालक बड़ा ही प्रतापी होगा। परन्तु मैं तो पूरी मन्दभागिनी हूँ, मुझे इसका सुख देखने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होगा। थोड़ी ही देर में समाचार पाते ही कंस इसको मार डालेगा।

इस प्रकार विचार मग्ना देवकी नीचे मुख किये हुए कुछ सोच ही रही थी कि उधर से वसुदेव जी आते हुए दिखाई पड़े। उनके मंजुल मुख पर हर्ष और विस्मय की मुद्रा अंकित हो रही थी। वे बड़े आश्चर्य में आकर अपने मन में कहने लगे कि आकाश में विद्युत छटा का उद्दामस्फुरण हो रहा है। नूतन जलधरों के गम्भीर घोष से पृथ्वी काँप रही है। मेरा अनुमान तो यह है कि दैत्यों के अत्याचार से प्रजावर्गों की रक्षा करने के लिये कृष्ण भगवान का अवतार हो गया है। अचानक उनकी दृष्टि देवकी पर पड़ी। उसका क्षामगात्र देख कर वसुदेव कहने लगे कि सात पुत्रों के मारे जाने से अनन्त दुख पाकर अब यह आठवें पुत्र की रक्षा करती हुई ऐसी मालूम होती है कि मानो पुत्र के व्याज से यह कंस की मृत्यु की रक्षा कर रही है।

यह कह कर वसुदेव फिर सोचने लगे कि अर्द्ध रात्रि का समय है। सारी मथुरा निद्रा देवी के अंक में विश्राम ले रही है। इसलिये जब तक कोई मुझे देख न पावे तब तक इस बालक को लेकर कारागार से निकल जाऊँ। फिर देवकी को समाधान करके वे कहने लगे कि मुझे इस बात का पता नहीं है कि मैं कहाँ जाऊँगा? दुरात्मा कंस इस समय पृथ्वी का सम्राट है।

इसलिये इस वालक को ले जाऊँ तो कहाँ ले जाऊँ, परन्तु जो कुछ भाग्य में लिखा है, वह तो होकर ही रहेगा, अच्छा मैं इस वालक को लिये जाता हूँ।

देवकी ने कहा कि हे प्राणनाथ! आप मेरे हृदयखण्ड को ले जाने से पहले एक वार मुझे उसका मुख कमल भली भाँति देख लेने दो। वसुदेव कहने लगे कि हे सुत्वत्सले! इसका मुख देख कर क्या करोगी? राहु के मुखान्तरगत चन्द्रमा को देखने से क्या लाभ है, कंस तो इसे मार ही डालेगा। देवकी कहने लगी कि नहीं महाराज इसके जन्म समय के महानिमित्तों से सिद्ध होता है कि कंस इसे न मार सकेगा। आप इसे लेकर जाइये।

वसुदेव कहने लगे कि आपका कथन ब्रह्मवाक्य के समान हो। यह वालक तो हमको बडा गरुआ मालूम होता है। पद्म-लोचन होते हुए भी यह विन्ध्य और मन्दर के समान गरुआ है। इसकी माता वास्तव में धन्य है जिसने इसे गर्भ में धारण किया। उस अवला का धैर्य सर्वथा सराहनीय है।

कंस के द्वारा कई पुत्रों के मार डाले जाने से वसुदेव को क्रोध हो रहा था। परन्तु उसके भय से कुछ क्षोभ भी था। अन्त में वह वालक को लेकर इस प्रकार चल पड़े जैसे कोई अपनी भुजाओं पर मन्दराचल को लेकर चले। उस समय सारी मथुरा सो रही थी। अन्धकार तो ऐसा था कि मानों आकाश से अञ्जन वरस रहा था। दृष्टि किसी प्रकार काम नहीं देती थी, इसी

समय उन्हें कुछ प्रकाश दिखलाई पड़ा। उसे देख कर वसुदेव चौंक पड़े। उन्होंने अनुमान किया कि बहुत सम्भव है कि कंस को मेरे भाग जाने का पता लग गया हो और वह मशालचियों को लिये हुए मेरे पीछे आता हो। इसलिये अब यही मेरा अन्तिम समय प्रतीत होता है। इस विचार से प्रेरित होकर वसुदेव ने अपना कृपाण निकाल लिया और कहा अच्छा आज इस दुरात्मा का दर्प चूर्ण करूँगा। परन्तु फिर अन्धकार मे कुछ दिखाई न पड़ा, वसुदेव की समझ में आ गया कि इस अन्धकार पूर्ण रात्रि में तो कुछ दिखलाई नहीं पड़ता था, सम्भवतः मेरे पुत्र ही ने मेरी मार्ग की सुविधा के लिये प्रभा दिखलाई है।

चलते-चलते वसुदेव को प्रसन्न गम्भीर पया कज्जल सलिला यमुना दिखलाई पड़ी। उसे देख कर वसुदेव का धैर्य शिथिल हो गया और वह अपने मन में कहने लगे कि अब कुछ करते धरते न बनेगा। भयंकर जल जन्तुओ से संकुलित लोल लहरों से युक्त इस यमुना को मन से भी पार करना कठिन है। परन्तु मुझे तो इन्हें अपने बाहुबल से पार करना है। इसलिये अब मैं इसमें पदार्पण करता हूँ, कार्य सिद्धि भाग्य के आधीन है।

वसुदेव के यमुना मे पदार्पण करते ही जल दो भागों में विभक्त हो गया। यह देखकर उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने जाना कि यमुना ने ही उन्हें मार्ग दे दिया है। यह सोच कर वे उसी मार्ग से पार आ गये। अब तो उन्हें हुंकार का शब्द

सुनाई पडने लगा, उससे उन्होंने अनुमान कर लिया कि घोप (गोपग्राम) निकट ही होगा। उन्हे यह भी स्मरण आया कि उनके अभिन्न हृदय मित्र एव सम्बन्धी नन्दराज भी वहीं पर रहते हैं। कंस की आज्ञा से मैंने इनके कोड़े लगाये थे, परन्तु चलो देखा जायगा, उन्हीं के यहाँ चले। फिर सोचने लगे कि रात्रि का अवशेष भाग यहीं वट के वृक्ष के नीचे बैठ कर व्यतीत करे, फिर चले। इस विचार से वह वहाँ बैठ गये और कहने लगे कि हे वृक्षदेव ! यदि यह बालक लोक हितार्थ कस को निधन करने के लिये वृष्णिवश में उत्पन्न हुआ है, तो गोपग्राम से कोई यहाँ आ जावे, और वे आने वाले मेरे परममित्र नन्दराज ही हो।

इसी समय सौभाग्यवश नन्दराज उधर से एक सद्यप्रसूता मृत कन्या को लेकर उसका अन्त्येष्टिक सस्कार करने लाये। वह कह रहे थे कि आज ही रात्रि को यह यशोदा के गर्भ से मरी हुई उत्पन्न हुई है, कल ही हमारे ग्राम मे इन्द्रयज्ञ होगा। इस कारण वश मैं इसको लेकर यहाँ चला आया हूँ, कि कोई कुटुम्बी इस रहस्य को न जान सके। संज्ञाहीन यशोदा को इस बात का भी पता नहीं है कि उसके पुत्र उत्पन्न हुआ है या कन्या।

नन्द का चिर परिचित कण्ठस्वर सुनकर वसुदेव ने अनुमान कर लिया कि यह तो मेरा मित्र नन्दराज ही है। इसलिये उन्होंने उनको अपनी ओर पुकार कर पूछने लगे कि ऐसे कुसमय तुम यहाँ कहाँ आये।

नन्द को अपना नाम लेकर पुकारते सुन कर बडा आश्चर्य

हुआ कि इस अन्धकारमयी रात्रि मे उन्हें कौन बुला रहा है। इस आश्चर्य का कारण एक और भी था। उनकी गोद मे मृत कन्या थी, इसलिये उन्होंने अनुमान किया कि कोई भूत, प्रेत, या पिशाच मुझे पुकार रहा ह, क्या करूँ, क्या न करूँ।

वसुदेव के फिर पुकारने से उनका कण्ठ स्वर पहचान कर नंद ने जाना कि यह वसुदेव है, परन्तु थोड़ी ही देर मे उनके हृदय में यह विचार उदय हुआ कि इनके पास जाकर क्या करूँ। कंस को आज्ञा से इन्होंने मुझे कोड़ो से पीट कर रस्सी से बाँधा था, इसलिये न जाऊँगा। इसके अनन्तर उन्होंने सोचा कि इससे क्या, इन्होंने जो कुछ किया, वह राजा की आज्ञा से किया, इनका क्या अपराध था, इसलिये चल कर इन्हे देखूँ तो।

नन्दराज सहसा वसुदेव की ओर चल पड़े। अब रात्रि प्रायः व्यतीत हो चुकी थी, अरुणोदय मे उन्होंने देखा कि वसुदेव पुत्र को लिये हुए बैठे हैं। वसुदेव के कुशलवृत्त पूछने पर. पहले तो नन्द ने कुछ टालमटोल की, परन्तु जब उन्होंने आग्रह पूर्वक शपथ दिला कर पूछा. तब तो अन्त मे नन्द को सारी व्यवस्था कहनी पड़ी। यह सुन कर वसुदेव को बड़ा दुःख हुआ और वह कहने लगे कि भाई यमराज को वंचित करना बड़ा कठिन है संसार की यही गति है, लोकधर्म भी ऐसा ही है। इसलिये इस मृतक कन्या को यहीं छोड़ दो और अधिक विलाप न करो। नन्द ने उनके परामर्शानुसार कन्या को वहीं रख दिया और पूछा

कि अब मैं क्या करूँ ।

वसुदेव कहने लगे कि आपको विदित है कि कंस ने मेरे सात निरपराध पुत्रों को मार डाला है । यह मेरा आठवाँ पुत्र है । इसकी आप रक्षा करें । मुझे तो पुत्र का सुख देखने का सौभाग्य ही प्राप्त न होगा, आप ही के भाग्य से यह जीवित रहे । नन्द निवेदन करने लगे कि महाराज यह तो ठीक है, परन्तु मुझे बड़ा भय लग रहा है कि यदि कंस को कहीं इसका पता लग गया तो मेरा शिर उड़वा दिया जायगा ।

वसुदेव ने देखा कि अब कार्य मे बाधा उपस्थित हुई, इसलिये फिर वह बोले कि अच्छा भाई नन्द, आज तक हमने जो कुछ भी तुम्हारे साथ उपकार किया है, उसके बदले मे यदि हो सके, तो तुम हमारे पुत्र की रक्षा करो। नन्द निरुत्तर हो गये, परन्तु कुछ सोच कर वे बोले कि मैं अवश्य इसकी रक्षा करूँगा, क्योंकि आपने मेरे साथ बहुत से उपकार किये हैं । लाइये अपने पुत्र को मेरे हवाले कर दीजिये, कंस की तो बात ही क्या यदि उस के पिता उग्रसेन भी इसे लेना चाहेंगे तो न ले सकेंगे, परन्तु मैं इस समय मृत कन्या के लाने के कारण अपवित्र हूँ, इसलिये यमुना में स्नान करके अभी आता हूँ फिर ले लूँगा ।

वसुदेव बोले कि पशुओं की खुरोत्थित धूल से ही अपने शरीर को पवित्र कर लीजिये । ज्योंहीं नन्द ने धूलि को उठाने के लिये अपना हाथ बढ़ाया, त्योंही वहीं पर पानी की धारा निकल पड़ी । वसुदेव बोले कि यह सब इस बालक का प्रभाव है । आप

यहाँ स्नान कर लीजिये। नन्द ने स्नान किया और कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया, परन्तु वह उन्हें बहुत गरुए मालूम होने लगे। इसलिये वे सोचने लगे कि कहाँ तो मेरे शरीर मे इतना बल था कि मैं लदी हुई गाड़ी को अकेले ही कीचड़ मे फँस जाने पर निकाल लेता था और लडते हुए बैलो के सींग पकड कर अलग कर देता था, परन्तु इसका कुछ कारण समझ में नही आता कि इस बालक को गोद मे लेने से मैं इतना क्यो थका जाता हूँ।

नन्द इन्ही विचारो मे मग्न हो रहे थे कि विष्णु भगवान् के चक्र, शंख, गदा, शारङ्ग, नन्दक आदिक दिव्यायुध तथा गरुड़ वाहन वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये। यह देख कर नन्द को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस मृत कन्या को वहीं छोड़कर प्रभात होते ही नन्द अपने गृह को चले गये।

वसुदेव अपने घर मथुरा आने को सन्नद्ध हुए ही थे कि वह रोने का शब्द सुन कर उसके पास गये और उसे जीवित देख कर अपने साथ ले आये।

(२)

कन्या के मथुरा मे आते ही भीषण अनिष्टो का सूत्रपात हुआ। पृथ्वी हिलने लगी, छज्जे गिर पड़े, कंस को ऐसा मालूम हुआ कि मानो चाण्डाल की स्त्रियाँ उससे कह रही हैं कि आओ हमारी कन्याये तुम्हारे साथ विवाह करेंगी। वह सोचने लगा कि यहाँ कोई रक्षक नही है और न किसी दीप का

प्रकाश ही हो रहा है। इसलिये ये इन्दीवरलोचना चाण्डाल कन्यकाएँ मेरे यहाँ आ गई हैं और ऐसे दुर्वचन कहने की धृष्टता कर रही हैं। मैं वही कंस हूँ जिसके क्रोधमात्र से शत्रुपक्ष नष्ट हो जाता था, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि भी क्षीणप्रभ हो जाते थे। स्वयम् कृतान्त और भय को भी मुझे देख कर भय लगता था, परन्तु यह स्त्रियाँ मुझे इस प्रकार डाट रही है।

कंस इन्हीं विचारों में मग्न हो रहा था कि सहसा शाप वहाँ पर उपस्थित हुआ। उसे आया हुआ देख कर वह कुछ भयभीत सा हो गया, और अपनी शय्या पर नेत्र मूँद कर लेट रहा। उसे निद्रागत जान कर शाप ने अलक्ष्मी, खलती, काल रात्रि, महानिद्रा और पिंगलाक्षा आदिकों को बुलाया और कहा कि इसके घर में सानन्द प्रवेश करो। इसी समय राजलक्ष्मी कंस के पास आने लगी। वहाँ उसने इन अमङ्गलकारिणियों का जमघट देख कर शाप से पूछा—अरे दुष्ट! तू लङ्का के समान सुविशाल मेरे घर मे क्यों आया? यहाँ तुझे किसने आने दिया है? क्या तू मेरे रहते महाराज का अनिष्ट कर सकता है? यह बड़ा ही गुणग्राही और बलवान् राजा है, मैं इसे नही छोड सकती।

शाप ने कहा—महारानी जी अब आप यहाँ से जाइये, क्योंकि विष्णु भगवान का ऐसा ही आदेश है। अब यहाँ हम लोगों का अकण्टक राज्य होगा।

इतने ही में कस की निद्रा भग हुई और उसने प्रतिहारी को

बुला कर पूछा कि यह चाण्डालिनी यहाँ कैसे चली आई। प्रतिहारी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि महाराज आप क्या कह रहे हैं। आपकी सेवा में तो मुझे भी आना भी कठिन हो जाता है, भला चाण्डालिनों की तो बात ही क्या है। कंस को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपने मन में सोचने लगा कि क्या मैंने स्वप्न देखा है। फिर उसने यशोधरा को आदेश दिया कि बालाक्य कंचुकी से कह कर अभी दोनों साम्वतसरिक पुरोहितों को बुलवाओ, और उनसे पूछो कि आज रात्रि को पृथ्वी क्यों हिली, भयंकर उल्कापात क्यों हुआ और भूचाल क्यों आया?

उन्होंने आकर राजा कंस के समक्ष वह सारा समाचार कह सुनाया। पुरोहितों ने कहा था कि महाराज आकाश से दुन्दुभी का रव सुनाई पड़ा और पृथ्वी हिल गई, इसका कारण यही है कि भगवान पुरुषोत्तम ने पृथ्वी पर जन्म लियां है। यह सुन कर कंस को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कंचुकी को आज्ञा दी कि यह उत्पात जिसके उत्पन्न होने से हुए हों उसका पता लगाओ। थोड़ी ही देर में उसे आकाशवाणी का स्मरण आया, इसलिये उसने तुरन्त वसुदेव को अपने पास बुला कर पूछा कि बतलाओ देवकी के पुत्र उत्पन्न हुआ या कन्या। वसुदेव ने उत्तर दिया कि महाराज कन्या उत्पन्न हुई है। कंस ने कहा कि कन्या हो या पुत्र, इसको तो मारना ही होगा, क्योंकि मुझे तो वधूक ऋषि का शाप है।

कंस की आज्ञा से यशोधरा उस कन्या को ले आई, कस ने उसको लेकर ज्योंही पटकने का उद्योग किया, त्योंही उसके शरीर का अर्द्ध भाग पृथ्वी पर गिर पडा और अर्द्धाविशेष आकाश मे उड़ कर शूलधारी रुद्र के समान विचरण करने लगा। थोडी ही देर मे वहाँ पर कात्यायिनी, कुण्डोदर, शूर, नील, मनोजव इत्यादिक आकर उपस्थित हो गये। कात्यायिनी ने उनसे कहा कि आप लोग गुप्त रूप से विष्णु के वालचरित्रो को देखने के लिये गोपाल वेश से गोप-ग्राम मे निवास करें।

(३)

इधर भगवान कृष्ण गोकुल (गोपग्राम) मे आकर वाल लीला करने लगे। कंस ने इन्हे मारने के लिये जिन-जिन राक्षसों को नियुक्त किया था वे सव वारी-वारी से आकर व्रज मे उपद्रव मचाने लगे। पहले पूतना आई। इसने भगवान को अपना विषलिप्त स्तन पिलाने की चेष्टा की। भगवान ने इसका भयकर आचरण देख कर इसे मार डाला। एक महीने के अनन्तर शकटासुर आया। भगवान ने एक लात मार कर ही इसका दर्प चूर्ण किया। भगवान कृष्ण ज्यो-ज्यों वढ़ने लगे त्यों-त्यों उनके उत्पात भी वढते गये। कभी किसी के घर में माखन चोरी करते, कभी किसी के पशु बन्धन मुक्त कर देते थे, कहीं किसी का दूध फैला देते थे और कभी किसी का वर्तन फोड़ डालते थे। इनके नैतिक उत्पातों से पीडित होकर व्रजवनिताएँ एक दिन यशोदा के पास आईं, और कृष्ण के उपद्रवों का

उपालम्भ देने लगी। उन पर विश्वास करके यशोदा ने भगवान को एक ओखली में बाँध दिया।

जब भगवान ओखली को लेकर चलने लगे तो वह अर्जुन के वृक्षों में फँस गई जिससे वे दोनों वृक्ष तुरन्त गिर पड़े, और दानव हो गये। यह देख कर गोपिकाएँ कहने लगी कि यह बालक वास्तव मे बड़ा ही प्रभावशाली और बली है। इसी समय खेल मे प्रलम्ब नाम का एक दानव आया। बलभद्र जी ने एक मुष्टिका प्रहार से उसका नाश किया।

एक दिन भगवान फल लाने के लिये तालवन को गये, वहाँ पर धेनुकासुर नाम का एक दैत्य मिला। वह गदहे का रूप रक्खे हुए था। भगवान ने उसका बॉया पैर उखाड़ लिया जिससे वह मर गया। इसके अनन्तर केशी नाम का दैत्य तुरंग बन कर आया। भगवान ने इसके भी पैर उखाड़ डाले।

इस प्रकार इन दुष्ट दैत्यो को मारकर भगवान आनन्द से व्रज-विहार करने लगे। एक दिन घोप सुन्दरी, वनमाला, चन्द्र-रेखा और मृगाक्षी आदि गोप कन्याओ के साथ भगवान ने रास आरम्भ किया। इस रास मे आज हल्लीसक नृत्य होने वाला था। नृत्य आरम्भ हुआ, गोप मण्डली नृत्य-सुख अनुभव कर ही रही थी कि इतने ही मे दामक नाम का एक गोप आकर कहने लगा कि महाराज अरिष्ट वृषभ नाम का दानव पृथ्वी को खोदता हुआ और जलद गम्भीर ध्वनि करता हुआ इधर आ रहा है। इतने ही मे वह वहाँ आ पहुँचा, परन्तु भगवान को देखकर

वह अपने मन में सोचने लगा कि यह बालक वास्तव में बड़ा ही दुर्धर्ष है क्योंकि मेरे ऐसे घोर दर्शन पशु का सिंहनाद सुनकर भी यह विचलित नहीं हुआ है। अन्त में वह भगवान कृष्ण से भिड गया। उन्होंने तुरन्त ही उसे मारकर देवताओं का उपकार किया।

इसी समय दामक ने उन्हे जमुनागत भीषमभुजङ्गम का स्मरण दिलाया।

(४)

भगवान काली महोरग का दर्प दलन करने के लिए यमुना की ओर चले। व्रज-सुन्दरियाँ उनके पीछे-पीछे चलीं, और उन्हें मना करने लगी कि महाराज उधर मत जाइये। यहीं दुष्ट पन्नग रहता है। फिर उन्होंने सकर्षण को पुकार कर कहा कि अपने भाई को इस दारुण अनुष्ठान से रोको। भगवान ने कहा कि तुम लोग घबराओ नहीं। इस दारुण भुजंग को अभी ठीक करता हूँ और अभी यमुना से इस कण्टक को निकाले लेता हूँ।

यह कहकर भगवान कालीदह में फाँद पडे और उसे पकड लाये। कालिया नाग कहने लगा कि अच्छा कृष्ण तुम सम्भल जाओ मैं अभी तुम्हें क्रोधाग्नि में भस्म करता हूँ। मैं सप्तपर्वत-युक्त सागर मेखला पृथ्वी को भस्म कर सकता हूँ, तुम्हारी तो कोई बात ही नहीं है। यह कहकर उसने भयंकर विषाग्नि छोडना आरम्भ किया, परन्तु कृष्ण पर उसका कुछ भी प्रभाव न पडा। तब तो उसे ज्ञान हो गया कि भला भगवान की इस भुजा को मैं

क्या हानि पहुँचा सकता है जिस पर उन्होंने गोवर्धन धारण कर लिया था। इसमें तो मन्दर का सार है। फिर वह भगवान से कहने लगा कि मैं आपकी शरण हूँ, मेरे ऊपर दया कीजिये। भगवान पूछने लगे कि तुम यमुना में क्यों रहते हो। कालीनाग ने उत्तर दिया कि महाराज मैं आपके वाहन गरुड़ के भय के मारे यहाँ छिपा रहता हूँ, इसलिए उनसे मुझे अभय कर दीजिये। भगवान के एवमस्तु कहने पर कालीनाग यमुना के विषाक्त जल से अपना विष खींचकर बाहर चला गया और भगवान ने कालीदह से बहुत से फूल ला कर गोपाङ्गनाओं को दिये।

इतने ही में वहाँ पर कंस का भेजा हुआ एक वीर आया और पूछने लगा कि नन्दगोपाल का पुत्र कहाँ है। उसे महाराज कंस ने मथुरा में धनुपयज्ञ महोत्सव देखने को बुलाया है, इसलिए सब गोप उत्सव में आकर सम्मिलित हों। यह कहकर वह वीर चला गया और भगवान ने सङ्कर्षण से कहा कि हम लोग कल ही चलेंगे और दुरात्मा कंस का नाश करेंगे।

(५)

कंसराज अपनी सभा में विराजमान थे। ध्रुवसेन को बुलाकर उन्होंने पूछा कि क्या अभी नन्दगोपाल का पुत्र आया या नहीं। उसने उत्तर दिया कि महाराज वह आगया, और आते ही आते उसने राज रजक से वस्त्र छीनकर पहन लिया। इतना ही नहीं, यह भी सुना है कि ज्योंही महावत ने उत्पलापीड़ हाथी

को उसकी ओर वढाया, त्यो ही उसके भाई ने उस गजेन्द्र के दोनों दॉतों को पकड कर खींच लिया, और उसे मार डाला। कंस ने कहा यह तो वडा अनर्थ हुआ। तुम स्वयं जाकर देखो क्या हो रहा है।

ध्रुवसेन देखने आया और फिर जाकर कंस से कहने लगा कि महाराज नन्दगोपाल के पुत्र ने इस समय कुब्जा नाम की दासी से गन्धमाल्यादिक छीन कर उनसे अपने शरीर को विभूपित किया और उस परिचारिका का कुब्जत्व भी नष्ट कर दिया। धनुपशाला रक्षक सिंहवल ने उसे वहुत कुछ रोका परन्तु उसने उसके सिर पर घूँसा मारा और धनुप छीनकर उसके दो टुकडे कर डाले। अव वह आपकी ओर आ रहा है। महावीर वलराम भी उसके साथ है। कस ने कहा अच्छा और कोई वात नही है। मुष्टिक, चाणूर नाम के मल्लों का अभी वुला लाओ। ध्रुवसेन तो उधर मल्लों को वुलाने गया और इधर कस ने अपनी अटारी पर जाकर मधुरिका को आज्ञा दी कि किवाड़ें बन्द कर लो।

थोड़ी ही देर मे मुष्टिक, चाणूर वहॉ आ पहुँचे। उनके पीछे-पीछे कृष्ण, वलराम भी वहॉ आ धमके। कस की आज्ञा से कृष्ण और मुष्टिक तथा वलराम और चाणूर में मल्ल युद्ध होने लगा। थोडी ही देर में कृष्ण और बलराम ने इन दोनों मल्लों को मार गिराया और अटारी पर चढ कर उन्होंने कंस का भी शिर काट लिया।

कंस का निधन देखकर राक्षसो ने पुकारा कि अरे आनाधृष्टि, शिविक, हृदिक, प्रसुक, सोमदत्त और अक्रूर आदिक वीरो जल्दी दौड़ो, स्वामी के ऋण से मुक्त होने का यही अवसर है। यह सुनकर सारी दैत्य सेना इकट्ठी हो गई। उसे देखकर बलराम ने कहा कि मैं इन लोगो को अभी ठीक करता हूँ।

बलराम सेना का मन्थन करने ही वाले थे कि उधर से वसुदेव आ गये और उन्होंने उच्च स्वर मे कहा कि अरे मथुरावासियो! दुस्साहस न करो यह हमारा ज्येष्ठ पुत्र है और इसकी माता का नाम रोहिणी है, यह दूसरा भी हमारा ही पुत्र है। इसकी माता का नाम देवकी है, इसलिए अस्त्र प्रहार न करो। कंस को मारने के लिए विष्णु भगवान स्वयं उपस्थित हो गये।

वसुदेव को देखकर कृष्ण और बलराम दोनो ही ने उन्हें प्रणाम किया। वसुदेव ने वीरो को आज्ञा दी कि महाराज उग्रसेन को अभी कारागार से निकाल लाओ (जिन्हे कंस ने बन्दी बना रक्खा था)।

उग्रसेन ने आकर भगवान को प्रणाम किया। वसुदेव ने घोषणा की कि आज से यहाँ के राजसूत्र संचालन का भार महाराज उग्रसेन लेगे। इतने ही मे नारद वहाँ पर आये और उन्होंने सबको आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया।

अविमारक

[प्रसङ्ग—भगवती भागीरथी के किनारे काशी नामक एक पुराण प्रख्यात नगर है। यहाँ पर बड़े-बड़े सूर्य्यवंशी राजा हो गये हैं जिनके पवित्र चरित्रों के स्मरण मात्र से जनता के सन्मुख एक नया आदर्श उपस्थित होता है। कालान्तर में इसी पुण्य-भूमि को सौवीरराज ने अपने जन्म से अलंकृत किया। इनका विवाह प्रमदारत्न सुदर्शना के साथ हुआ था। इन्हीं महामहिम महिषी के गर्भ से हमारे चरित्रनायक अविमारक का जन्म हुआ था।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" लोकोक्ति के अनुसार राजकुमार अविमारक में एक से एक बढ़कर लोकोत्तर गुणों का सन्निवेश था। महारानी सुदर्शना के भ्राता का नाम कुन्तिभोज था। इनका विवाह राजकुमारी देवी के साथ हुआ था. और इसी के गर्भ से रतिशोभा विनोन्दिनी कुरङ्गाची कुरङ्गी का जन्म हुआ था। यही कुरंगी इस कथा की नायिका है। आगे चलकर विधिवश राजकुमार अविमारक और कुरंगी प्रणय सूत्र में आबद्ध हो गये।

(१)

जिस प्रकार प्राची दिशा मे भुवन भास्कर के उदय होते ही लोकत्रय का अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही राजकुमार अविमारक के उत्पन्न होने से विश्व का दुख जाता रहा और काशी में नित्यप्रति उत्सव मनाये जाने लगे। ज्यो-ज्यों आदित्य खण्ड के समान राजकुमार का प्रताप वढता गया, त्यो-त्यों महाराज सौवीरराज और महाराणी सुदर्शना का आनन्द भी वढता गया। इस समय काशिराज की शोभा राजकुमार अविमारक के साथ ऐसी हो रही थी, जैसे स्कन्द से उमा, वृपाङ्क की या जैसे जयन्त से शची, पुरन्दर की होती है। ऐसे प्रतापशाली वालक के रहते हुए महाराज सौवीरराज एक प्रकार से निश्चिन्त हो गये थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि अव इस राज्य में सदा शान्ति वनी रहेगी और किसी प्रकार का अनिष्ट या उपद्रव तो कोई होगा ही नहीं।

एक दिन धूमकेतु नाम का एक असुर महाराज सौवीरराज के राज्य में उपद्रव करने के लिए आया। असुरों की प्रकृति ही कुछ ऐसी नीच होती है कि उनका चाहे कोई अनिष्ट करे या न करे, परन्तु वे जनता का अनिष्ट अवश्य करेंगे। यह धूमकेतु सर्वलोक संहार की इच्छा से वहुत दिनों से इधर उधर परिभ्रमण करता था। आज इसकी शनिदृष्टि सौवीरराष्ट्र पर पडी। वलावलेप मे आकर यह सुरेश्वर को भी तृणावृत समझता था। पिछले युद्धों में कई वार इसके ऊपर वज्र के प्रहार व्यर्थ हो चुके थे और ऐरावत के दशन इसके

विशाल वक्षस्थल पर लगकर मूली के समान टूट चुके थे।

काशी मे आते ही आते इसने प्रलयकाण्ड उपस्थित कर दिया। सारी प्रजा में हाहाकार मच गया। महाराज सौवीरराज ने इसके अत्याचारो से प्रजा का परित्राण करने के लिये यथेष्ट उपाय किया, परन्तु उन्हे अधिक सफलता प्राप्त न हुई। इस कारण उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

राजकुमार अविमारक अभी निरे बालक थे। अस्त्र-विद्या का उन्हे अभी अभ्यास कराया जाता था। एक दिन यह अपनी बाल मण्डली के साथ खेलते-खेलते उसी प्रदेश मे जा पहुँचे जहाँ पर यह दुर्दान्त असुर रहता था। राजकुमार को जाने का अवसर इसलिये मिल गया कि उस दिन उनके रक्षको ने उनकी ओर अधिक ध्यान न दिया था।

राजकुमार अविमारक को अपनी ओर आते हुए देखकर उस राक्षस को बडा आनन्द हुआ और वह अपने मन में कहने लगा कि ऐसा मृदुल कोमल आहार कहाँ मिलने को था। विधाता ने घर बैठे ही आज भोजन भेज दिया। इस विचार से अन्तकवक्त्रयन्त्र की जम्भा की विडम्बना करने वाले अपने मुख-गह्वर को फैलाकर वह असुर उनका स्वागत करने के लिये चला।

तेजस्वियो को रणोपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। उनके प्रताप मात्र मे ही विघ्न बाधायें नष्ट हो जाती हैं। प्रताप निधि भास्कर जब तक प्रकाश करने के लिये निकलता है, तब

तक अरुण ही अन्धकार को निरस्त कर देते हैं। ठीक ऐसी ही दशा उस नीच असुर की हुई। निरस्त्र राजकुमार ने उसे इसी प्रकार मार गिराया जैसे कुलिश, पर्वत को नष्ट कर देता है या जैसे दावाग्नि वन प्रदेश को भस्म करती है।

अधम असुर के मारे जाने से काशी में फिर पूर्ववत शान्ति स्थापित हो गई। जब महाराज सौवीरराज को राजकुमार अवि-मारक के इस लोकोत्तर साहस एव शौर्य का पता लगा तो उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे अपने को भूरि भाग्यशाली समझने लगे। वास्तव मे अपने पूर्वजों के सत्कर्म से ही गुणशाली यशस्वी सन्तान प्राप्त होती है। यह गौरव सबके भाग्य मे नहीं लिखा होता है।

भाग्यचक्र कभी स्थिर नहीं रहता, रथचक्र के समान मनुष्य की भाग्य रेखा भी चलती रहती है। जिन महाराज सौवीरराज का प्रताप इतना बढा चढा हुआ था, अब उनकी अवनति का समय आया। वास्तविक बात तो यह है कि अभ्युदय और ह्रास सबका होता है। औरों की तो कोई बात नहीं, तेजोराशि भगवान चन्द्रदेव को देख लीजिये। सुमेरु के मस्तक पर पादन्यास करके वह विष्णु के मध्यम धाम तक जाते हैं, परन्तु समय पाकर इनका भी ह्रास होता है। अरुणोदय के समय अल्पावशेष मयूखों के साथ यह आकाश से गिरते है और इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हैं कि उन्नति के पीछे अवनति भी होती है।

सौवीरराज को मृगया का व्यसन था, इसलिये यह बहुधा

आखेट की खोज में वन को जाया करते थे। एक वार दुर्भाग्य-वश इन्होंने एक कृशानु कल्प तपस्वी को वन में देखा जिसका नाम चण्डभार्गव था। एक तो वह स्वभाव ही से वड़ा क्रोधी था, परन्तु उस दिन उसके क्रोध का एक और कारण विशेष हो गया। इसके किसी शिष्य को एक व्याघ्र ने वन में मार डाला था।

जब शिष्य के मारे जाने का समाचार मिला, तव तो यह कृत्या के समान भयंकर क्रोध करके जटाओं को फटकारते हुए अपने अन्य शिष्य के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए वन की ओर उस मृत छात्र का पता लगाने चला, और मार्ग में सौवीरराज से मिला। यह महाराज को पहचानता था। इसलिये पूर्ववत राज निन्दा करता रहा कि ऐसे राजा के राज्य में रहने से क्या है, जो तपस्वियों के आश्रम भूमि की भी सुव्यवस्था न कर सके और उनके शिष्यों को व्याघ्र आदिक हिंसक पशु मारकर खा जाया करें, परन्तु महाराज अपने राजमहलों में विहार करते रहें।

सौवीरराज ने उससे इन अधिक्षेपों का कारण पूछा, परन्तु क्रोध कलित ब्राह्मण इतने आवेश में था कि उसने महाराज की एक न सुनी और पूर्ववत वकता ही रहा। जब किसी प्रकार उसकी वाग्धारा वन्द न हुई तो महाराज ने कहा कि आप कोई बात तो कहते नहीं हैं, परन्तु रोपाधिक्य के कारण व्यर्थ आक्षेप कर रहे हैं। आप इसलिये तपस्या के पात्र नहीं हैं। क्रोध करना तो तामस प्रकृति राक्षसों का काम है। मेरा अनुमान तो यह है कि आप ब्रह्मर्षि के रूप में कोई चाण्डाल हैं।

यह सुनकर रोपरजित तपस्वी की क्रोधाग्नि मे मानो घृत पड गया और वह अपनी जटाओ को फटकारते हुए बोला कि तुमने मुझे यह न जानकर कि मैं ब्रह्मर्षियो मे मुख्य हूँ चाण्डाल कहा है, इसलिये तुम सपुत्र कलत्र चाण्डाल हो जाओ। सन्तोप की बात तो इतनी ही थी कि इस महाक्रोधी तपस्वी ने महाराज को शाप देकर ही छोड दिया, भस्म नही कर डाला, अन्यथा यदि दुर्वासा की तरह यह महाराज को ब्रह्मशाप से भस्म करने लगता, तो इसे कौन रोक लेता। तपस्वियो की कृपा जितनी ही अच्छी होती है उनका क्रोध भी उतना ही भयकर होता है।

ऐसा दारुण शाप सुनकर महाराज सौवीरराज को बड़ी खिन्नता हुई, क्योकि वे एक राजा थे। सम्पत्ति सुखों का उपभोग करके दुखमय जीवन व्यतीत करने का दुर्भाग्य जिन लोगों को प्राप्त होता है, वे ही इस दुखित जीवन की कठिनाइयाँ समझते हैं। भावी अनिष्ट की आशका से महाराज सौवीरराज का हृदय टूट गया और उन्होंने शापानुग्रह के लिये प्रार्थना की। तब वह तपस्वी कुछ शान्त हुआ और बोला कि अच्छा यह शाप तुम्हारा वर्ष भोग्य ही होगा, परन्तु यह व्यर्थ नहीं हो सकता।

इस प्रकार ब्रह्मर्षि के शाप से महाराजा सौवीरराज का सारा विभव नष्ट हो गया और वह काशी छोड़कर अविमारक और उसकी माता को साथ लेकर कुन्तिभोज के राज्य मे चले गये और वहीं गुप्त रूप से रहने लगे।

राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरंगी अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण उन्हें बहुत प्रिय थी। यों तो पुत्री पुत्र की अपेक्षा अधिक प्रियपात्र होती ही है, तिस पर यदि उसके कोई भाई न हो तो माता पिता का स्नेह न जाने कितना बढ़ जाता है। ठीक यही दशा कुरंगी की थी। एक दिन राजकुमारी कुरंगी अपने मातापिता की आज्ञा से उद्यान-विहार के लिये गई। राजा ने इसकी देखरेख के लिये अपने मन्त्री कौञ्जायन और भूतिक को भेज दिया था। बहुत देर तक राजकन्या उद्यान की शोभा देखती रही। यह उद्यान नन्दनवन की शोभा को भी मन्द करता था। संसार में वसन्तऋतु दो ही महीने रहती है, परन्तु इस उद्यान में बारहों महीने उसका अखण्ड राज्य रहता था। कहीं मंजरी-मंडित रसाल की शाखाओं पर काकपाली पञ्चम स्वर से वसन्त बहार अलाप रही थी, कहीं दूर्वा मंडित हरित भूमि पर वहीं नृत्य कर रहा था। सरोवरों में कमल-कलाप खिले हुए थे जिनके ऊपर रोलम्बावली झनकार कर रही थी।

इस प्रकार लोचनाभिराम दृश्यों को देखकर राजकुमारी का चित्त वहाँ से आने को नहीं करता था, परन्तु परिचारिकाओं के अनुरोध से अन्त में उसे राजमन्दिर को आना ही पड़ा। राजकुमारी की शिविका जब मार्ग में आ रही थी, उस समय एक बड़ी ही दुर्घटना हो गई। सहसा राजा का एक विशालकाय हाथी उन्मत्त होने के कारण अपने बन्धनों को तोड़कर

गजशाला से वाहर निकल आया। इस मदमत्त मातङ्ग ने न जाने कितने वृक्षों को अपने शुण्ड से पकड कर उखाड डाला। जिसको पाया उसी को पददलित किया। जिन-जिन लोगों ने इसका मार्गावरोध करने का प्रयत्न किया वे सब के सब यम-पुरी को चले गये। इसने सारे नगर को ऐसे मथ डाला, जैसे अम्भोजनी-वन को एक छोटा हाथी मथ डालता है। अन्त मे यह वड़े वेग से चिंघाडता हुआ कुरगी के शिविका की ओर झपटा। उसे देखकर परिचारिकाये हाहाकार करने लगी इसके अतिरिक्त वे कर ही क्या सकती थी। क्योंकि अवलाओं का एक मात्र अस्त्र हाहाकार ही होता है।

राजकुमारी के मरण में अव किसी प्रकार की शका नही रह गई। अकस्मात उधर से एक अज्ञातकुलशील युवक आ निकला। सच तो यह है कि भाग्य रक्षित व्यक्ति का यमराज भी कुछ नहीं विगाड़ सकते। इस युवक ने अपने प्राणों की चिन्ता न करके आगे वढकर हाथी का विशाल शुण्ड पकड लिया और उछल कर उसके मस्तक पर एक ऐसा दण्डाघात किया कि वह कुछ सहम सा गया। इसी समय शिविका वाहकों को राजकुमारी को शीघ्रतापूर्वक ले जाने का अवसर मिल गया और वे उसको लिये हुए भागते-भागते राजमन्दिर मे जा पहुँचे। पीछे से कौञ्जायन मन्त्री भी वहीं आ गया।

महाराज कुन्तिभोज राजमहिषी देवी के साथ वैठे हुए कुछ वार्तालाप कर रहे थे। यह वार्ता कुरंगी के विवाह के

सम्बन्ध में थी। राजा का चित्त दुखित हो रहा था। होने वाले इष्ट अथवा अनिष्ट अपने आगमन का समाचार किसी न किसी प्रकार दे ही देते हैं। कौञ्जायन ने राजमन्दिर में आकर महाराज के सामने सारी करुण कथा कह सुनाई कि कैसे ईश्वरेच्छा से कुरंगी यमराज की दाढ़ों से सकुशल निकल आई। महाराज को सारा हाल सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने मन्त्री से कहा कि तुमने ऐसे परोपकारी युवक को बिना पुरस्कृत किये कैसे जाने दिया, उसका पता तो लगाना चाहिये था। मन्त्री ने निवेदन किया कि महाराज मैं उसका पता लगाकर ही आता, परन्तु भूतिक ने मुझसे कहा था कि तुम महाराज के पास जाकर सारा समाचार कह सुनाओ मैं इस युवक का पता लगाने जाता हूँ और अभी थोड़ी देर में इस सम्बन्ध में सब बातें जानकर आऊँगा।

कौञ्जायन से इस दुर्घटना का विस्तृत वर्णन सुनने के लिये महाराज वहीं बैठ गये और उन्होंने महारानी को आज्ञा दी कि तुम अन्तःपुर में जाकर शीघ्र ही कुरंगी को धैर्य बंधाओ मैं अभी आता हूँ। महारानी तो चली गई और महाराज कुन्तिभोज से कौञ्जायन अभी कुछ कह ही रहे थे कि द्वारपाल जयसेन ने आकर भूतिक के आने का समाचार महाराज को सुनाया। उन्होंने आज्ञा दी कि भूतिक मंत्री को अभी ले आओ। द्वारपाल ने वैसा ही किया।

भूतिक ने आते ही महाराज को प्रणाम किया और निर्दिष्ट

आसन पर बैठकर कहना आरम्भ किया महाराज आज आपके पुरासञ्चित पुण्यो के फल से ही कुरगी की मृत्यु मुख मे जाने से रक्षा हुई, अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि एक दण्डपाणि युवक किसी दुर्धर्ष मदमत्त मातङ्ग के आक्रमण का निराकरण कर सकता। कुरंगी को शिविका पर चढा कर मैंने राजमदिर को भेजा और फिर स्वय उस मातङ्ग को पकडने की चेष्टा करने लगा। बड़ी कठिनाई से अन्य हाथियो द्वारा उसे फँसाकर गजशाला मे बाँध आया और फिर मैं उस अज्ञात कुलशील युवक का पता लगाने चला गया।

वह युवक बडा ही विनम्र स्वभाव का था। उसके इस लोकोत्तर त्याग और साहस की प्रशसा चारो ओर हो रही थी, परन्तु वह युवक शिर नीचा किये हुए चुपचाप अपने घर को जा रहा था, मानो लोगो द्वारा उसे आत्मप्रशसा सुनना ही इष्ट न था। मैं भी उसके पीछे-पीछे लगा चला गया और अन्त में मुझे मालूम हुआ कि वह कोई अन्त्यज है। देवता के समान उसका रूप था क्षत्रिय के समान उसका तेज था, और ब्राह्मण के समान उसकी वचन रचना थी। सुकुमार होते हुए भी उसमें पर्याप्त बल था। इन बातो के होते हुए भी अगर वह अन्त्यज हो, तो हमारा शास्त्र परिश्रम व्यर्थ है, क्योंकि उनके अनुसार अन्त्यजो के लक्षण कुछ और ही होते हैं।

राजा ने पूछा कि क्या उसके स्त्री है या नहीं। मंत्री ने उत्तर दिया कि हाँ महाराज अवश्य है, परन्तु मैंने उसका विशेष

परिचय नहीं प्राप्त किया, क्योंकि ऐसा वार्तालाप सज्जनों को शोभा नहीं देता। इस पर महाराज ने पूछा कि यदि तुम यह उचित नहीं समझते, तो उसके पिता का ही पता लगा लाते। मंत्री ने कहा कि महाराज उन्हें तो मैंने देखा था। नियमित रूप से व्यायाम करने के कारण उनका शरीर सुदृढ़ था। वृषभ के स्कन्धों के समान उनके स्कन्ध थे, प्रकोष्ठ में मौर्वी घात का चिह्न बना हुआ था, राज लक्षण का समन्वय उनमें परिलक्षित होता था, और वे मेघान्तरगत सूर्य बिम्ब के समान शोभा देते थे।

राजा ने कहा बड़ा अच्छा है, परन्तु तुम फिर जाकर उनकी परीक्षा करो, और उनकी जाति कुल का पूरा-पूरा पता लगा कर आओ। परन्तु यह तो बताओ कि काशिराज के दूत से क्या कहना होगा, मंत्री ने उत्तर दिया कि महाराज विवाहार्थी राज-दूत तो आते ही रहते हैं, कन्या के वाग्दान में त्वरता और दीर्घ सूत्रता दोनों ही का परित्याग करके देश-कालानुसार कार्य करना चाहिये।

महाराज के पूछने पर कौञ्जायन ने निवेदन किया कि सौवीरराज और काशिराज दोनों ही आपके बहनोई होने के कारण निकट सम्बन्धी हैं और सौवीरराज ने अपने पुत्र के लिये आपसे कन्या की याचना भी की थी। उस समय यह कह कर टाल दिया गया था कि कन्या अभी विवाह वयस्का नहीं है। इस समय काशिराज ने अपने पुत्र के लिये दूत भेजा है, जैसा

महाराज चाहें, वैसा करें, हाँ महाराणी के भ्राता होने के कारण सौवीरराज का सम्बन्ध ही अधिक उचित जान पडता है। परन्तु फिर उन्होने कोई दूत क्यों नहीं भेजा। भूतिक ने उत्तर दिया कि महाराज हमने जो कुछ पता लगाया था उसका सार यह है, कि न तो सपुत्र सौवीरराज के दर्शन होते हैं, न राजकुल मे प्रवेश ही प्राप्त होता है और न कोई कारण ही समझ मे आता है। हाँ राज-सूत्र संचालन मंत्रियों के द्वारा हो रहा है।

राजा कहने लगे कि यह तो बडी चिन्ता का प्रसग है। कुमति मत्री बहुधा कामाहत राजाओ का काम करते हैं। रोगातुर पुरुप ही आत्मीय जनो का अनुराग नही देख सकते। शापाहत पुरुप ही शान्तिपूर्वक पडा रहता है। इन बातो के अतिरिक्त राजा के अवरोध गृह में पड़े रहने का कोई कारण नही मालूम होता है।

राजा और मन्त्रियों में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि महाराज को स्नान वेला के अतिक्रमण होने का समाचार मिला और उनसे यह भी कहा गया कि महाराणी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं, तथा कुरगी भी व्याकुल हो रही है, प्रजा-जन इस उपद्रव के शान्त होने से आपके दर्शन करना चाहते हैं, इसलिये आप चले। यह सुन कर महाराज अन्त'पुर को चले गये।

(२)

मदमत्त मातङ्ग से कुरंगी की रचा करके राजकुमार अवि-

मारक अपने आवास को चले तो आये, परन्तु अपना हृदय कुरंगी को दे आये। उस समय से कुरंगी की भयाकुल दृष्टि और प्रकम्पित गात्रों ने उनके हृदय में दृढ़ स्थान कर लिया और वह उसके अनुराग में इतने मग्न हुए कि अहर्निश उसकी मंजुल मूर्ति उन्हें नहीं भूलती थी।

इधर कुरंगी भी उस अज्ञातनामा नवयुवक के रूप लावण्य पर इतनी मुग्ध हुई थी कि आत्म विस्मृति के कारण उसके अंगों ने अपना-अपना व्यापार करना बन्द कर दिया। जिससे नीलनिका, मागधिका और विलासिनी प्रभृति परिचारिकाओं को बड़ा शोक हुआ। धात्री को तो उसके प्राणपरित्याग तक की आशंका होने लगी। उन्हें इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि वह कौनसा भाग्यशाली पुरुष है जिसके लिये राजकुमारी का उन्माद इतना बढ़ा हुआ है। इस समय नलिनिका के हृदय में यह बात आई कि हस्तिसम्भ्रम-दिवस से ही राजकुमारी की दशा ऐसी दयनीय हो रही है। सम्भव है कि यह परित्राता युवक पर ही मुग्ध हो, इसलिये वह धात्री के साथ उसके गृह को चली गई और वहाँ जाकर उसने देखा कि वही युवक (राजकुमार अविमारक) बैठा हुआ किसी सुन्दरी का कुछ वर्णन कर रहा है। धात्री ने ताड़ लिया कि यही युवक राजकुमारी के हृदय को चुराने वाला है, इसलिये उन्होंने उससे प्रार्थना की कि आप राजकुमारी के अन्त पुर में अवश्य आवें। यह कह कर वे दोनों चली गईं।

उनके जाते ही अविमारक का सन्तुष्ट नामक विदूषक वहाँ

आ गया। अविमारक ने उससे कुरंगी के सम्बन्ध का सारा हाल कह सुनाया। इस पर उसने उत्तर दिया कि महाराज रात्रि में परगृह प्रवेश का योंही निषेध किया गया है, तिस पर आप सुपरिरक्षित राजगृह में गुप्तरूप से प्रवेश करना चाहते हैं, यह प्रसंग अत्यन्त भयानक है। यदि आपने इस पर भी जाने का निश्चय ही कर लिया है, तो मुझे भी साथ लेते चलिये, क्योंकि मैं आपका मित्र हूँ और सच्चे मित्र की परीक्षा का यही अवसर है। अविमारक ने उत्तर दिया कि मित्र! अभिन्न स्नेह के कारण ही तुम ऐसा कहते हो। क्या तुमको मेरा बल विक्रम स्मरण नहीं है। मनुष्यों की तो कोई बात ही नहीं, मैंने बिना अस्त्र ग्रहण किये हुए उस दैत्य को भी मारा है जिसने पहले अपने नगर में प्रलय काण्ड उपस्थित कर रक्खा था। मेरे बाहु-दण्ड ही रण आयुध हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्र का भी यह वचन है, कि परगृह को अकेले ही जाना चाहिये, दो आदमियों के साथ मंत्रणा करना चाहिये और बहुत से सहायकों को लेकर युद्ध में प्रवृत्त होना चाहिये। आप निश्चिन्त रहें, शत्रु मेरा कुछ नहीं कर सकते।

(३)

कुरंगी भी उस नवयुवक से वियुक्त होने के कारण स्मर ज्वाला में जली जाती थी, रात्रि के समय जब अंधकार चारों ओर व्याप्त हो गया, तब वह अपनी सखियों को साथ लेकर हर्म्य पृष्ठ पर जा बैठी और माधविका को उसने शय्या बिछाने

की आज्ञा दी, और आप तल्प पर जाकर लेट गई। सखियाँ उसका मनोविनोद करने के लिये इधर-उधर की बातें करने लगीं। माधविका कहने लगी कि महाराज ने आपका विवाह काशिराज के पुत्र जयवर्मा के साथ करना निश्चय किया है और उनका राजदूत भी आ चुका है। कुरंगी कहने लगी कि यह असम्भव है, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि महाराज मेरी इच्छा के विरुद्ध न करेंगे। फिर उसने पूछा कि विवाह का निश्चय कब हुआ है। इस प्रकार सखियों से बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा, परन्तु अन्त में राजकुमारी को बड़ी कठिनता से निद्रा आ गई।

उधर अविमारक ने राजमन्दिर में प्रवेश का निश्चय करके तस्कर का वेष धारण किया और रस्सी और करवाल को हाथ में लेकर वह चलने को तैयार हुआ। चलते समय उसने सोचा कि देखो प्रेम भी बड़ी बुरी वस्तु है। इसके कारण मनुष्य को उन्माद हो जाता है, उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। साहस आ जाता है, और वह बड़े-बड़े विद्वानों की भी विवेकशील बुद्धि को मन्द कर देता है। यह सोचकर वह चल पड़ा, और चलते-चलते राजमन्दिर के पास विशाल अट्टालिका के ऊपर से आते हुए सुमधुर तन्त्रीनाद को सुनने लगा। स्वर की कोमलता से उसने अनुमान कर लिया कि कोई स्त्री गा रही है।

आगे चल कर अविमारक राजकुमारी के मन्दिर के नीचे पहुँच गया, और उसने अपने इष्ट देव का स्मरण करके रस्सी को

आ गया। अविमारक ने उससे कुरंगी के सम्बन्ध का सारा हाल कह सुनाया। इस पर उसने उत्तर दिया कि महाराज रात्रि में परगृह प्रवेश का योंही निषेध किया गया है, तिस पर आप सुपरिरक्षित राजगृह मे गुप्तरूप से प्रवेश करना चाहते हैं, यह प्रसग अत्यन्त भयानक है। यदि आपने इस पर भी जाने का निश्चय ही कर लिया है, तो मुझे भी साथ लेते चलिये, क्योंकि मैं आपका मित्र हूँ और सच्चे मित्र की परीक्षा का यही अवसर है। अविमारक ने उत्तर दिया कि मित्र! अभिन्न स्नेह के कारण ही तुम ऐसा कहते हो। क्या तुमको मेरा बल विक्रम स्मरण नहीं है। मनुष्यो की तो कोई बात ही नही, मैंने विना अस्त्र ग्रहण किये हुए उस दैत्य को भी मारा है जिसने पहले अपने नगर मे प्रलय काण्ड उपस्थित कर रक्खा था। मेरे बाहु-दण्ड ही रण आयुध हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्र का भी यह वचन है, कि परगृह को अकेले ही जाना चाहिये, दो आदमियो के साथ मत्रणा करना चाहिये और बहुत से सहायको को लेकर युद्ध मे प्रवृत्त होना चाहिये। आप निश्चिन्त रहे, शत्रु मेरा कुछ नहीं कर सकते।

(३)

कुरंगी भी उस नवयुवक से वियुक्त होने के कारण स्मर ज्वाला में जली जाती थी, रात्रि के समय जब अंधकार चारों ओर व्याप्त हो गया, तब वह अपनी सखियो को साथ लेकर हर्म्य पृष्ठ पर जा बैठी और माधविका को उसने शय्या बिछाने

की आज्ञा दी, और आप तल्प पर जाकर लेट गई। सखियाँ उसका मनोविनोद करने के लिये इधर-उधर की बातें करने लगीं। माधविका कहने लगी कि महाराज ने आपका विवाह काशिराज के पुत्र जयवर्मा के साथ करना निश्चय किया है और उनका राजदूत भी आ चुका है। कुरंगी कहने लगी कि यह असम्भव है, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि महाराज मेरी इच्छा के विरुद्ध न करेंगे। फिर उसने पूछा कि विवाह का निश्चय कब हुआ है। इस प्रकार सखियों से बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा, परन्तु अन्त में राजकुमारी को बड़ी कठिनता से निद्रा आ गई।

इधर अविमारक ने राजमन्दिर में प्रवेश का निश्चय करके तस्कर का वेष धारण किया और रस्सी और करवाल को हाथ में लेकर वह चलने को तैयार हुआ। चलते समय उसने सोचा कि देखो प्रेम भी बड़ी बुरी वस्तु है। इसके कारण मनुष्य को उन्माद हो जाता है, उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। साहस आ जाता है, और वह बड़े-बड़े विद्वानों की भी विवेकशील बुद्धि को मन्द कर देता है। यह सोचकर वह चल पड़ा, और चलते-चलते राजमन्दिर के पास विशाल अट्टालिका के ऊपर से आते हुए सुमधुर तन्त्रीनाद को सुनने लगा। स्वर की कोमलता से उसने अनुमान कर लिया कि कोई स्त्री गा रही है।

आगे चल कर अविमारक राजकुमारी के मन्दिर के नीचे पहुँच गया, और उसने अपने इष्ट देव का स्मरण करके रस्सी को

ऊपर की ओर फेंक दिया और उसे पकड कर वह राजमन्दिर पर चढ गया। वहाँ मे खड़े होकर वह राजमन्दिर की शोभा देखता रहा। इतने ही मे नलिनिका के मुख से यह बात निकल गई कि अरी धात्री उस युवक ने तो आज ही आने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अब तक न जाने क्यो नहीं आया। राजकुमारी की दशा उसके बिना और भी अधिक शोचनीय हो रही है। यह सुनकर अविमारक उनके पास जा खड़ा हुआ। उसे आया देख कर उन दोनो को बडी प्रसन्नता हुई।

सखियो ने कुरगी को जगाया और वह भी अपने उपकारी युवक को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। कुछ देर तक विश्रम्भालाप के अनन्तर अविमारक फिर अपने घर को लौट आया।

(४)

अविमारक राजगृह से लौट कर बहुत व्यथित हुआ। उसे कुसुमायुध ने अपने तीक्ष्ण बाणों से इतना जर्जरित कर रक्खा था कि उसने अपनी जीवन की आशा छोड कर प्राणोत्सर्ग करना निश्चित किया, क्योंकि दुखमय निराश जीवन की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है। इसी विचार से प्रेरित होकर वह दावाग्नि में घुसने के लिये चल पडा। परन्तु अग्नि के अंश से उत्पन्न होने के कारण वह उसमे भस्म न हो सका। अन्त मे भग्न हृदय कुमार ने पर्वत शृंग पर चढ़कर अध पात के द्वारा अपने प्राण परित्याग का निश्चय किया, परन्तु ज्योही वह पर्वत के ऊपर चढा, त्योंही उसे एक विद्याधर दम्पति के दर्शन हुए, जो

भगवान् अगस्त के किसी उत्सव विशेष में सम्मिलित होने के लिये गये थे और उसकी समाप्ति होने पर उक्त पर्वत पर विश्राम करने के लिये ठहर गये थे। इस विद्याधर का नाम मेघनाद और इसकी स्त्री का नाम सौदामिनी था। विद्याधर ने अविमारक से उसका परिचय पूछते हुए कहा कि तुम इस देवताओं की विहार स्थली में कैसे विचरण कर रहे हो। पहले तो अविमारक ने अपना विचार प्रगट करना उचित नहीं समझा परन्तु फिर यह समझ कर कि अन्तकाल में असत्य न कहना चाहिये उसने यथार्थ बात कह दी, कि मैं सौवीरराज का पुत्र हूँ और एक प्रमदा रत्न के प्रेम से वंचित होकर यहाँ पर आत्म-घात करने के लिये आया हूँ।

विद्याधर को उसके ऊपर बड़ी दया आई और उसने कहा कि कुमार! मैं तुम्हें इस निराश प्रेम में सफलता प्राप्त करने में सहायता दूँगा। यह कह कर उसने अपनी अँगूठी निकाली और उसे अविमारक को देकर कहा कि राजकुमार! देखो, यह अपूर्व वस्तु है, जिस समय इसे आप दाहिनी उँगली में धारण कर लेंगे उस समय आप अदृश्य हो जायँगे और जिस समय बाईं अँगुली में पहनेंगे उस समय लोग आपको देख सकेंगे। राजकुमार ने उसकी उसी समय परीक्षा की और विद्याधर की बात ठीक निकली।

इसके अनन्तर विद्याधर ने उसे एक दिव्यास्त्र भी प्रदान किया, और कहा कि अब तुम सानन्द राजकुमारी के मंदिर

को चले जाओ। तुम्हें कोई भी देख न सकेगा। ईश्वर तुम्हे सफलता प्राप्त करायगा। यह कहकर विद्याधर अपनी प्रियतमा के साथ देवलोक को चले गये और अविमारक पर्वत से उतर कर अपने निवास की ओर चले।

इधर अविमारक का विदूषक संतुष्ट उनके बिना बहुत दुखी हो रहा था। उसने यही निश्चय कर लिया था कि यदि राजकुमार के दर्शन न हो, तो मैं भी अपने प्राण परित्याग कर दूँगा।

उधर राजकुमार पर्वत से उतरते ही संतुष्ट के सम्बन्ध मे चिन्ता करने लगे कि न जाने मेरे बिना उसकी क्या दशा हुई होगी, क्योंकि वही मेरा एकमात्र सहाय है। कुछ आगे चलकर अविमारक ने विदूषक को देखा तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने अपने मित्र से विद्याधर के मिलने और अँगूठी प्राप्त करने के सम्बन्ध में सारा समाचार कह सुनाया और उससे फिर एकबार राजकुमारी के गृह मे प्रवेश करने की अनुमति माँगी।

विदूषक ने कहा कि जब आपके पास स्वरक्षा का कोई साधन न था, तब तो आप मेरे निषेध करने पर भी चले गये थे, परन्तु अब तो ईश्वर की कृपा से सफलता का साधन आपके हाथ मे है। चलिये मैं भी इस बार आपके साथ चलता हूँ।

(५)

अविमारक और विदूषक दोनो ही राजमदिर में गुप्त रूप से चले गये और उन्होंने कुरगी को देखा। उस समय वह करुण

रस की प्रतिमूर्ति प्रतीत होती थी। उसके शिर मे तीव्र वेदना हो रही थी। नलिनिका व्यथा को दूर करने के लिये औषध का प्रयोग कर रही थी। कुरंगी का जीवन ऐसा भार हो रहा था कि वह अपना प्राण परित्याग करने को तैयार हुई थी परन्तु परिचारिकाओं के समक्ष ऐसा करना असम्भव था इसलिये उसने नलिनिका और हरिणिका को टालने के लिये उन्हे अपनी माता के पास भेजा और उनसे कहलवाया कि अब मेरी व्यथा शान्त हो गई, आप किसी बात की चिन्ता न करे। सखियाँ चली गई।

एकान्त मे एक बार फिर कुरंगी के हृदय मे निराशा की सरिता प्रबल वेग से बहने लगी। उसने अपने उत्तरीय वस्त्र को उद्‌बन्धन बनाकर प्राण परित्याग करना निश्चय किया। कुरंगी आत्मघात करने को ही थी कि राजकुमार अविमारक जो अब तक अँगूठी के प्रभाव से गुप्त रूप से खड़े हुए सारा रहस्य देख रहे थे अधिक देर तक धैर्य धारण न कर सके और उन्होंने विदूषक से कहा कि इसे बचाओ। यह कहकर उन्होंने बाँई उँगली से उस अँगूठी को पहन लिया और कुरंगी के निकट जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि राजकुमारी! तुम यह निकृष्ट कार्य क्यों कर रही हो। यह दुस्साहस तुम्हे शोभा नही देता। यह कहकर उन्होंने उसका उद्‌बन्धन छुड़ाया और बहुत कुछ उसे आश्वासन दिया. और थोड़ी देर बाद उसे समझा बुझाकर विदूषक के साथ अपने घर को लौट आये।

(६)

धात्री कहने लगी कि विधाता की गति बडी विलक्षण है। हमारे महाराज सौवीरराज के पुत्र विष्णुसेन (अविमारक) के साथ कुरंगी का विवाह करना चाहते थे परन्तु विधिवश उसका संयोग किसी अज्ञात कुलशील परम रूप सम्पन्न युवक विशेष से हो गया। अब इस समय काशिराज के कनिष्ट पुत्र जयवर्मा और उनकी माता सुदर्शना को महामान्य भूतिक राजमंदिर में ले आये हैं। काशिराज यज्ञ व्यापार में सम्मिलित होने के कारण नहीं आ सके हैं। अब देखें क्या होता है। महाराणी जयवर्मा के साथ कुरंगी का विवाह करना चाहती हैं।

इस समय एक नई घटना हुई। सौवीरराज के मन्त्रियों ने अपना एक दूत कुन्तिभोज के पास भेजकर उनसे कहला भेजा कि हमारे स्वामी सकुटुम्ब आपके राज्य में गुप्त रूप से रहते हैं। यह सुनकर महाराज कुन्तिभोज को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे भूतिक को लेकर उन्हें ढूँढने के लिए चल पडे।

भूतिक के हृदय में यह विचार उदय हुआ कि हो न हो यह उसी लोकोत्तरकर्मा कुमार के पिता होंगे जिसने हस्तिविद्रावण के समय अपना परिचय नहीं दिया था। इस विचार से प्रेरित होकर वह उसी चिरपरिचित स्थान की ओर चल पड़े। सौवीरराज अपने द्वार पर बैठे हुए थे। कुन्तिभोज ने उन्हें देखते ही पहचान लिया और गाढ़ालिंगन करके उनका अभिवादन किया।

सौवीरराज भी उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु अवि-

मारक से वियुक्त होने के कारण उनके मुख पर विषाद की रेखा अंकित हो रही थी। कुशल प्रश्न पूछे जाने पर सौवीरराज ने कहा कि एक वर्ष से राजकुमार अविमारक का पता नहीं लगता। इसी दुख से हम लोग दुखित हो रहे हैं। महाराज ने पूछा कि इसका कारण क्या है। सौवीरराज ने वह सारा दारुण प्रसंग कह सुनाया, जैसे वे ब्रह्मशाप से चाण्डाल हुए थे और इस समय शापमुक्त होने के कारण वे फिर पूर्ववत हो गये थे।

इसी समय देवर्षि नारद वहाँ पर आ गये। सौवीरराज और कुन्तिभोज ने उनका अभिवादन किया। नारद ने कहा कि मैं तुम्हें इस समय अविमारक का पता देने आया हूँ। वे इस समय यहीं वैरन्त्य नगर में अपने विवाह के लिये आये हैं। यह सुन कर कुन्तिभोज और सौवीरराज दोनों को बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। उन्हें विस्मित देखकर देवर्षि नारद ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया तब दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

कुरंगी और अविमारक का विधिवत विवाह करा दिया गया। नारद के परामर्श से कुरंगी की कनिष्ठा भगिनी सुमित्रा का विवाह अविमारक के कनिष्ट भ्राता जयवर्मा के साथ करा दिया गया। सौवीरराज अपने पुत्रों और पुत्र वधुओं के साथ काशी चले गये और वहाँ आनन्द से दिन बिताने लगे।

* समाप्त *